श्रीपद्मनन्दिमुनि के द्वारा रचित

धर्मरसायन

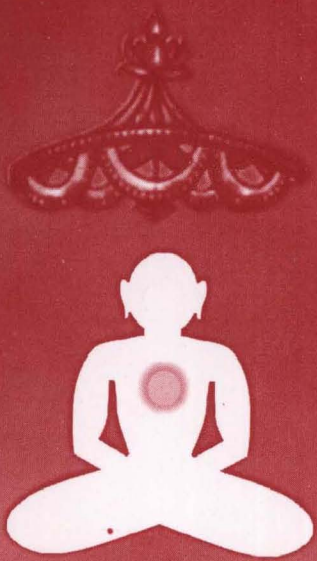

सम्पादक
प्रो. (डॉ.) सागरमल जैन

अनुवादक
डॉ. विनोद कुमार शर्मा

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरिपउमणंदिमुणिणा रइयं
धम्मरसायणं

श्रीपद्मनन्दिमुनि के द्वारा रचित

धर्मरसायन

अनुवादक
डॉ. विनोद कुमार शर्मा
विभागाध्यक्ष, संस्कृत
पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
शाजापुर (म.प्र.)

सम्पादक
प्रो. (डॉ.) सागरमल जैन

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मरसायन

ग्रन्थ का नाम	–	धर्मरसायन
ग्रन्थ के रचयिता	–	श्री पद्मनन्दि मुनि
अनुवादक	–	डॉ. विनोद कुमार शर्मा
सम्पादक	–	डॉ. सागरमल जैन
प्रकाशक	–	प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)
प्राप्ति स्थान	–	प्राच्य विद्यापीठ, दुपाड़ा रोड, शाजापुर (म.प्र.) 465001
प्रकाशन वर्ष	–	प्रथम संस्करण, सन् 2010 ई.
मूल्य	–	रुपये 40 (रुपये चालीस मात्र)
मुद्रक	–	आकृति ऑफसेट 5, नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.) दूरभाष – 0734–2561720 मोबाइल – 98276–77780

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

ग्रन्थ की विषयवस्तु :-

'धम्मरसायण' नामक प्रस्तुत कृति माणकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला के पुष्प 21 के सिद्धान्तसारादि-संग्रह नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत हमें उपलब्ध हुई। इसके नाम से ही स्पष्ट है कि प्रस्तुत कृति का उद्देश्य धर्म के स्वरूप को स्पष्ट करना रहा है। प्रस्तुत कृति में निम्नांकित सोलह विषयों का संकलन है- 1. मंगलाचरण, 2. धर्म की महिमा, 3. धर्म-अधर्म का विवेक, 4. नरक गति का स्वरूप, 5. तिर्यंच गति का स्वरूप, 6. कुमनुष्य गति का स्वरूप, 7. देव गति का का स्वरूप, 8. धर्म के वास्तविक स्वरूप की परीक्षा, 9. सर्वज्ञ के स्वरूप की समीक्षा, 10. जिनेन्द्र परमात्मा की महिमा, 11. धर्म के प्रकार, 12. सम्यक्त्व का माहात्म्य, 13. सागार (गृहस्थ) धर्म, 14. देवसुगति, 15. मनुष्यसुगति, 16. अणगार धर्म (मुनि धर्म)।

इस प्रकार प्रस्तुत कृति में उपर्युक्त 16 विषयों का प्रतिपादन हुआ है। चारों गति एवं दोनों प्रकार के धर्म मूलत: धर्म से ही सम्बन्धित है। अत: कृति का नाम धम्मरसायण सार्थक ही सिद्ध होता है।

ग्रन्थ की भाषा एवं परम्परा :-

प्रस्तुत कृति 193 प्राकृत गाथाओं में निबद्ध है, किन्तु जहाँ तक इसकी प्राकृत के स्वरूप का प्रश्न है यह न तो अर्धमागधी है, और न शौरसेनी है, क्योंकि इसमें मध्यवर्ती 'त' के स्थान पर 'द' के प्रयोग का प्राय: अभाव ही है जो कि शौरसेनी प्राकृत का एक प्रमुख लक्षण है। दिगम्बर परम्परा के प्राय: सभी ग्रन्थ शौरसेनी प्राकृत में पाये जाते हैं। यदि हम इसकी विषयवस्तु का विचार करें तो यह स्पष्ट है कि यह दिगम्बर परम्परा का ग्रन्थ है, क्योंकि इसमें मुनि के अट्ठाईस मूल गुणों की चर्चा है (देखें गाथा 183)। इसी प्रकार इसमें परमात्मा (अरहंत परमात्मा) को क्षुधा तृषादि दोषों से रहित बताया है, यह भी दिगम्बर दृष्टिकोण है (गाथा 120)। तीसरे इसकी गाथा 123 में प्रयुक्त 'णिरंबरों' शब्द भी कृति के दिगम्बर परम्परा से सम्बद्ध होने की पुष्टि करता है। फिर भी मध्य 'त' का द न होने की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवृत्ति यही प्रमाणित करती है कि यह कृति अर्धमागधी-प्रभावित महाराष्ट्री प्राकृत में ही रचित है। इसमें प्राय: इच्छइ, खाइ, जाइ पावइ, होइ, सेवइ आदि रूप ही मिलते हैं। कहीं-कहीं महाराष्ट्री प्राकृत की 'य' श्रुति भी देखी जाती है जैसे गाथा 186 में महासीयं (महाशीत) और सीयं (शीत) रूप। इसी प्रकार प्रथम गाथा में थुय, लोयालोयं, पयासेइ आदि शब्द भी 'य' श्रुति के पोषक ही हैं।

ग्रन्थकर्ता :-

जहाँ तक प्रस्तुत कृति के कर्ता 'मुन पद्मनन्दि' का प्रश्न है दिगम्बर परम्परा में पद्मनन्दि नामक अनेक आचार्य हुए हैं। सर्वप्रथम तो आचार्य कुन्दकुन्द का मूल नाम भी पद्मनन्दि कहा जाता है। इनका काल ईसा की दूसरी शती से पाँचवी शती के मध्य माना जाता है, किन्तु प्रस्तुत कृति की विषय-वस्तु, भाषा-शैली आदि कुन्दकुन्द से भिन्न होने के कारण यह उनकी कृति नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त त्रिकाल-योगी के शिष्य पद्मनन्दि का उल्लेख मिलता है। इनका काल सन् 930 से 1023 ई. माना जाता है। इसी प्रकार ई. सन् 994 के भी एक पद्मनन्दि का उल्लेख मिलता है, किन्तु इन दोनों पद्मनन्दि में कौन पद्मनन्दि इसके कर्ता हैं, यह कहना कठिन है। इनके अतिरिक्त ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तराध में वीरनन्दि के शिष्य पद्मनन्दि का उल्लेख मिलता है। सम्भवत: इन तीनों पद्मनन्दि में से कोई पद्मनन्दि ही इस कृति के कर्ता हो सकते हैं। क्योंकि इस कृति में परीक्षा मुख आदि की जो शैली है वही शैली धर्मपरीक्षा, देवपरीक्षा आदि के रूप में इस ग्रन्थ में भी है। शैलीगत समानता के आधार पर यह कृति ईसा की दसवीं से बारहवीं शती के मध्य की मानी जा सकती है। ग्रन्थ-प्रशस्ति में ग्रन्थकार ने मात्र अपना नाम उल्लेखित किया है तथा अपने को यम-नियम का पालक मुनि बताया है। इसके अतिरिक्त उनके सम्बन्ध में हमें भी अधिक ज्ञात नहीं है।

- डॉ.सागरमल जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवतारणा

श्रीपद्मनन्दि मुनि-प्रणीत 'धम्मरसायणं' धर्म के गूढ तत्त्व की सरल भाषा में व्याख्या करने वाला महत्त्वपूर्ण जैन ग्रन्थ है। प्राकृत भाषा में निबद्ध इस कृति में कुल 193 गाथाएँ हैं।

'धम्मरसायणं' की अन्तिम गाथा में ग्रन्थकर्त्ता ने अत्यन्त संक्षेप में अपना परिचय देते हुए कहा है कि 'यम-नियमों से युक्त श्रेष्ठ पद्मनन्दिमुनि ने भव्य जीवों के बोध के लिए संक्षेप में इस धम्मरसायणं ग्रन्थ का प्रणयन किया है' -

भवियाण बोहत्थणं इय धम्मरसायणं समासेण।
वरपउमणंदिमुणिणा रइयं जमणियमजुत्तेण॥

चरक ने जराव्याधिविध्वंसी भेषज को रसायन कहा है– जराव्याधिविध्वंसी भेषजं तद्रसायनम्[1]। धम्मरसायणं ग्रन्थरत्न में भी धर्म के उस रसायन का प्रतिपादन किया गया है जो जन्म, जरा तथा मरण के दु:खों का विनाशक तथा इहलोक-परलोक के लिए हितकारी है। अत: इस ग्रन्थ का 'धम्मरसायणं' अभिज्ञान सर्वथा सार्थक है।

धम्मरसायणं में धर्म का स्वरूप इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है–

(क) जो सर्वज्ञ के द्वारा प्रतिपादित[2], जन्म-जरा-मरण के दु:खों का विनाशक तथा इहलोक-परलोक के लिए हितकारी है, वह धर्म है[3]।

(ख) धर्म त्रिलोक का बन्धु तथा शरणस्थल है- 'धम्मो तिलोयबंधू धम्मो सरणं हवे तिहुयणस्स'[4]।

(ग) समस्त त्रिलोकी में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो धर्म के द्वारा प्राप्त न हो सकती हो– 'तं णत्थि जं ण लब्भइ धम्मेण कएण तिहुयणे सयले'[5]।

---

1. चरक–संहिता से उत्तररामचरित (व्याख्याकार-आनन्दस्वरूप), पृ. 178 पर उद्धृत।
2. ... धम्मं सव्वण्हुपण्णत्तं। धम्मरसायणं, 94
3. वुहजणमणोहिरामं जाइजरामरणदुक्खणासयरं।
   इहपरलोयहिजत्थं तं धम्मरसायणं वोच्छं॥ तदेव, 2
4. तदेव, 3
5. तदेव, 6

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थकार के द्वारा प्रतिपादित धर्म की अवधारणा से सिद्ध होता है कि धर्म ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सर्वविध कल्याण-परम्परा का हेतु है। मुनिप्रवर श्रीपद्मनन्दि की उक्त धर्म-परिभाषा महर्षि कणाद के धर्मलक्षण के काफी समीप है। कणाद ने 'जिससे मनुष्यों के ऐहलौकिक अभ्युदय तथा पारलौकिक निःश्रेयस् की सिद्धि होती है उसे धर्म कहा है'– 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः'।

श्री पद्मनन्दि ने धर्म के माहात्म्य को रेखाङ्कित करते हुए कहा है कि धर्म तीनों लोकों का बन्धु तथा शरणस्थल है। धर्म से ही मनुष्य पूजनीय होता है।[1] धर्म से विशाल कुल तथा उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है और संसार में यश फैलता है।[2] श्रेष्ठ भवन, यान-वाहन, शयन-आसन, भोजन, वस्त्राभूषण आदि की प्राप्ति भी धर्म से होती है।[3] त्रिलोकी में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो धर्माचरण के द्वारा प्राप्त न हो सकती हो। धर्म से हीन मनुष्य समस्त दुःखों को प्राप्त करता है।[4]

मुनीन्द्र का मत है कि संसार में अनेक प्रकार के धर्म हैं जो नाम की दृष्टि से तो समान हैं किन्तु गुणों की दृष्टि से विचार किया जाय तो उनमें से कुछ ही धर्म उत्तम हैं।[5] इसलिए धर्म-अधर्म का भेद जानकर ही मनुष्य को धर्म का ग्रहण करना चाहिए।[6] ग्रन्थकार का उपदेश है कि बुद्धिमानों को कुधर्म का परित्याग करके, संसार को पार करने के लिए सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट धर्म को ही ग्रहण करना चाहिये–

---

1. धम्मो तिलोयबंधू धम्मो सरणं हवे तिहुयणस्स।
   धम्मेण पूयणीओ होइ णरो सव्वलोयस्स॥
   धम्मरसायणं, 3
2. धम्मेण कुलं विउलं धम्मेण य दिव्वरूवमारोग्गं।
   धम्मेण जए कित्ती धम्मेण होइ सोहग्गं॥ तदेव, 4
3. वरभवणजाणवाहणसयणासणयाणभोयणाणं च।
   वरजुवइवत्थुभूसणं संपत्ती होइ धम्मेण॥ तदेव, 5
4. तं णत्थि जं ण लब्भइ धम्मेण कएण तिहुयणे सयले।
   जो पुण धम्मदरिद्दो सो पावइ सव्वदुक्खाइं॥ तदेव, 6
5. धम्मा य तहा लोए अणेयभेया हवंति णायव्वा।
   णामेण समा सव्वे गुणेण पुण उत्तमा केई॥ तदेव, 11
6. धम्माधम्मविसेसं णाऊण णरेण घेतव्वं॥ तदेव, 8

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिचइऊण कुधम्मं तम्हा सव्वण्हुभासिओ धम्मो।
संसाररुत्तरणट्ठं गहियव्वो बुद्धिमंतेहिं ॥[1]

धर्म के भेदों का विवेचन करते हुए मुनीन्द्र ने कहा है कि जिनों के द्वारा धर्म दो प्रकार के बतलाये गये हैं- सागार (गृहस्थ) तथा अनगार (संन्यास)[2]। जिसमें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत हैं उसे सागार धर्म कहा गया है।[3] अनगारों के लिए सर्वदा सब प्रकार से आचरणीय अट्ठाईस मूलगुण तथा अनेक उत्तरगुण बतलाये गये हैं। इस प्रकार का धर्म ही अनगार धर्म है।[4]

मुनिश्रीपद्मनन्दि के अनुसार सागार एवं अनगार दोनों प्रकार के धर्मों का सार 'सम्यक्त्व' है– 'एएसिं दोण्हं पि हु सारं खलु होइ सम्मत्तं'[5]। सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह जिसके हृदय में सर्वदा प्रवाहित होता है, कर्मरूपी बालू का आवरण उसे बन्धन में नहीं डाल सकता।[6] सम्यक्त्वरूपी रत्न की प्राप्ति हो जाने पर जीव को नरक एवं तिर्यक् गतियों में नहीं जाना पड़ता–

सम्मत्तरयणलब्भे णरयतिरिक्खेसु णत्थि उववाओ।
जइ ण मुअइ सम्मत्तं अहव ण बंधाउसो पुव्वं ॥[7]

अन्त में वह भव-भ्रमण से मुक्त होकर मोक्ष-सुख का आस्वादन करता है।

– विनोद कुमार शर्मा

---

1. धम्मरसायणं, 95
2. धम्मो जिणेण भणिओ सायारो तह हवे अणायारो। तदेव, 139
3. पंच य अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तिण्णेव।
   चत्तारि य सिक्खावययाइं सायारो एरिसो धम्मो॥ तदेव, 142
4. अट्ठदस-पंच पंच य मूलगुणा सव्वतो सदाणयाराणं।
   उत्तरगुणा अणेया अणयारो एरिसो धम्मो॥ तदेव, 183
5. तदेव, 139
6. तदेव, 140
7. तदेव, 141

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरस्क्रिया

ऋषि-मुनि एवं देवता हर देश और हर काल में हुए हैं। सोलह वर्ष पूर्व जब मैं शाजापुर आया था तब प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर के निदेशक, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त विद्वान् डॉ. सागरमल जैन के दर्शन मुझे इसी रूप में प्राप्त हुए थे। कुछ वर्ष पहले मेरे निवेदन करने पर उन्होंने मुझे श्रीपद्मनदिन्मुनि-प्रणीत 'धम्मरसायणं' का हिन्दी-अनुवाद करने का आदेश दिया था। ईशप्रसाद एवं विराट् प्रकृति की अनुकूलता से यह कार्य आज पूर्ण हो सका है।

'धम्मरसायणं' की मूलप्रति में अनेक स्थानों पर लुप्त पाठ की पूर्ति एवं संस्कृत रूपान्तर के निर्धारण में डॉ. सागरमल जैन ही मेरे पथ-प्रदर्शक एवं निर्देशक रहे हैं। अनुवाद-कार्य में आयीं कठिनाइयों का परिहार भी उन्हीं की अनुकम्पा से सम्भव हो सका है। सत्प्रेरणा, सत्परामर्श, सर्वविध सहयोग, मार्गदर्शन, सौजन्य और वात्सल्य के लिए मैं सर्वदा उनका आभारी रहूँगा।

परम पूज्य पिता श्री राम प्रकाश शर्मा एवं पूजनीया माता श्रीमती मुन्नी देवी को मैं साष्टाङ्ग प्रणाम करता हूँ जिन्होंने बहुविध कष्ट सहकर भी मुझे अध्ययन के लिए सदा प्रेरित किया है। श्रद्धेय गुरुवर्य डॉ. केवल कृष्ण आनन्द तथा डॉ. सत्य प्रकाश सिंह चौहान के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ जिनकी गोद में बैठकर मैंने देववाणी की शिक्षा प्राप्त की। अर्धाङ्गिनी श्रीमती आशा शर्मा, पुत्री ध्वनि एवं आस्था तथा पुत्र उत्कर्ष साधुवाद के पात्र हैं जिन्होंने ज्ञानार्जन में मेरी अहर्निश सहायता कर मेरा पथ सुगम बनाया है।

उन सभी सहयोगियों का भी मैं आभारी हूँ जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष सहयोग मुझे इस सत्कार्य में प्राप्त हुआ है। जिन मनीषियों की कृतियों से मुझे अनुवाद-कार्य में सहायता प्राप्त हुई है उनका मैं ऋणी रहूँगा। प्रकाशक संस्था प्राच्य विद्यापीठ के प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ जिसने इस पुस्तक को प्रकाशित किया है। सुन्दर, साफ-सुथरे एवं आकर्षक मुद्रण के लिए आकृति ऑफसेट (उज्जैन) धन्यवाद के पात्र हैं जिनके परिश्रम से यह पुस्तक आकार ग्रहण कर सकी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रण-सम्बन्धी त्रुटियों को दूर करने का यथाशक्य प्रयास किया गया है, तथापि कतिपय भूलों का रह जाना सम्भव है। अत: संशोधन एवं परिमार्जन के लिए सुधीजनों के सुझाव सादर आमन्त्रित हैं।

शेष, विद्वज्जन ही प्रमाण हैं। कविकुलशिरोमणि कालिदास के शब्दों में–

आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये योगविज्ञानम्।
बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेत: ॥

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1.2)

- विनोद कुमार शर्मा

'उत्कर्ष'
विजय नगर कॉलोनी,
शाजापुर (म.प्र.)
26 दिसम्बर 2009 (शनिवार)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

क्र.	विषय	गाथा क्र. से क्र. तक
1.	मङ्गलाचरण	1–2
2.	धर्म-महिमा	3–7
3.	धर्म-अधर्म-विवेक	8–19
4.	नरकगति-वर्णन	20–73
5.	तिर्यक्गति-वर्णन	74–79
6.	कुमनुष्यगति-वर्णन	80-86
7.	देवगति-वर्णन	87-93
8.	धर्म-परीक्षा	94-95
9.	सर्वज्ञ-परीक्षा	96-130
10.	भगवान् जिनेन्द्र-महिमा एवं स्तवन	131-138
11.	धर्म-भेद (अनगार एवं सागार)	139
12.	सम्यक्त्व-माहात्म्य	140-141
13.	सागारधर्म-विवेचन	142-156
14.	देवसुगति-वर्णन	157-178
15.	मनुष्य-सुगति-वर्णन	179-181
16.	अनगार धर्म-विवेचन	182-192
17.	ग्रन्थ-समापन	193

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरिपउमणंदिमुणिणा रइयं

धम्मरसायणं

णमिऊण देवदेवं धरणिंदणरिन्दइंदथुयचलणं।
णाणं जस्स अणंतं लोयालोयं पयासेइ ॥1॥
वुहजणमणोहिरामं जाइजरामरणदुक्खणासयरं।
इहपरलोयहिज (द) त्थं तं धम्मरसायणं वोच्छं ॥2॥

नत्वा देवदवं धरणीन्द्रनरेन्द्रस्तुतचरणं।
ज्ञानं यस्यानन्तं लोकालोकं प्रकाशयति ॥1॥
बुधजनमनोभिरामं जातिजरामरणदुःखनाशकरम्।
इहपरलोकहितार्थं तं धर्मरसायनं वक्ष्ये ॥2॥

धरणेन्द्र, नरेन्द्र तथा इन्द्र के द्वारा जिनके चरणों की स्तुति की जाती है तथा जिनका अनन्त ज्ञान लोक और अलोक को प्रकाशित करता है अर्थात् जानता है, उन देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा को नमस्कार करके मैं धर्म के उस रसायन (अमृत) का वर्णन करता हूँ जो विद्वज्जनों के हृदय को तृप्त करने वाला है; जन्म, जरा तथा मृत्यु के दुःखों का विनाशक है और इहलोक-परलोक के लिए हितकारी है।

धम्मो तिलोयबंधू धम्मो सरणं हवे तिहुयणस्स।
धम्मेण पूयणीओ होइ णरो सव्वलोयस्स ॥3॥

धर्मः त्रिलोकबन्धुः धर्मः शरणं भवेत् त्रिभुवनस्य।
धर्मेण पूजनीयः भवति नरः सर्वलोकस्य ॥3॥

धर्म तीनों लोकों अर्थात् तिर्यक्लोक, ऊर्ध्वलोक, एवम् अधोलोक का बन्धु (मित्र) है। तीनों लोकों का शरणस्थल धर्म ही है। धर्म से ही मनुष्य समस्त लोकों का पूजनीय होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मेण कुलं विउलं धम्मेण य दिव्वरूवमारोग्गं ।
धम्मेण जए कित्ती धम्मेण होइ सोहग्गं ॥4॥

धर्मेण कुलं विपुलं धर्मेण च दिव्यरूपमारोग्यम् ।
धर्मेण जगति कीर्तिः धर्मेण भवति सौभाग्यम् ॥4॥

धर्म से व्यक्ति को विशाल कुल प्राप्त होता है। धर्म से ही दिव्य रूप तथा उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है। धर्म से ही व्यक्ति का संसार में यश फैलता है और धर्म से ही सौभाग्य प्राप्त होता है।

वरभवणजाणवाहणसयणासणयाणभोयणाणं च ।
वरजुवइवत्थुभूसणं संपत्ती होइ धम्मेण ॥5॥

वरभवनयानवाहनशयनासनयानभोजनानां च ।
वरयुवतिवस्त्रभूषणानां सम्प्राप्तिः भवति धर्मेण ॥5॥

श्रेष्ठ भवन, रथ आदि यान, अश्व आदि वाहन, शयन-आसन, भोजन, सुन्दरी युवती, वस्त्र एवम् आभूषण आदि की प्राप्ति भी धर्म से होती है।

तं णत्थि जं ण लब्भइ धम्मेण करण तिहुयणे सयले ।
जो पुण धम्मदरिद्दो सो पावइ सव्वदुक्खाइं ॥6॥

तन्नास्ति यन्न लभ्यते धर्मेण कृतेन त्रिभुवने सकले ।
यः पुनः धर्मदरिद्रः स प्राप्नोति सर्वदुःखानि ॥6॥

समस्त त्रिलोक में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो धर्म (का आचरण) करने से प्राप्त न हो सकती हो। किन्तु जो धर्म से दरिद्र अर्थात् हीन है वह समस्त दुःखों को प्राप्त करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो धम्मं ण करंतो इच्छइ सुक्खाइं कोई णिब्बुद्धी।
सो पीलऊण सिकयं इच्छइ तिल्लं णरो मूढो ॥7॥

यो धर्ममकुर्वन् इच्छति सुखानि कश्चित् निर्बुद्धिः।
स पीलयित्वा सिकतामिच्छति तैलं नरो मूढः ॥7॥

जो कोई मूर्ख व्यक्ति धर्मकार्य किये बिना ही सुखप्राप्ति की इच्छा करता है। वह मूढ मनुष्य बालू को पेरकर (निचोड़कर) तेल प्राप्त करना चाहता है।

सव्वो वि जणो धम्मं घोसइ[1] ण य कोइ जाणइ अहम्मं।
धम्माधम्म[2]विसेसं णाऊण णरेण घेतव्वं ॥8॥

सर्वोऽपि जनः धर्मं घोषयति न च कश्चिज्जानाति अधर्मम्।
धर्माधर्मविशेषं ज्ञात्वा नरेण गृहीतव्यम् ॥8॥

सभी लोग धर्म की घोषणा करते हैं अर्थात् धर्म की बात करते हैं, अधर्म को तो कोई जानता ही नहीं है। अतः धर्म और अधर्म के भेद को जानकर ही मनुष्य को धर्म का ग्रहण करना चाहिए।

खीराइं जहा लोए सरिसाइं हवंति वण्णणामेण।
रसभेएण य ताइं वि णाणागुणदोसजुत्ताइं ॥9॥

क्षीराणि यथा लोके सदृशानि भवन्ति वर्णनामभ्याम् ॥
रसभेदेन च तान्यपि नानागुणदोषयुक्तानि ॥9॥

जैसे संसार में पाये जाने वाले सभी प्रकार के दूध रंग अर्थात् सफेदी और नाम (की दृष्टि) से एक जैसे होते हैं। किन्तु यह तो स्वाद से ही ज्ञात होता है कि उनमें से कौन-सा दूध गुणयुक्त है तथा कौन-सा दोषयुक्त।

---

1. घोसय णइ
2. धम्मधम्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काइं वि खीराइं जए हवंति दुक्खावहाणि जीवाणं।
काइं वि तुट्ठि पुट्ठि करंति वरवण्णमारोग्गं ॥10॥

कान्यपि क्षीराणि जगति भवन्ति दुःखप्रदानि जीवानाम्।
कान्यपि तुष्टिं पुष्टिं कुर्वन्ति वरवर्णमारोग्यम्॥10॥

संसार में पाया जाने वाला, कुछ प्राणियों का दूध जीवों को दुःख प्रदान करने वाला होता है। जबकि कुछ प्राणियों का दूध सन्तुष्टि, पोषण, सुन्दर रंग तथा उत्तम स्वास्थ्य प्रदान करने वाला होता है।

धम्मा य तहा लोए अणेयभेया हवंति णायव्वा।
णामेण समा सव्वे गुणेण पुण उत्तमा केई ॥11॥

धर्माश्च तथा लोके अनेकभेदा भवन्ति ज्ञातव्या।
नाम्ना समा सर्वे गुणेन पुनरुत्तमाः केचित्॥11॥

उसी प्रकार संसार में अनेक प्रकार के धर्म हैं, जो जानने योग्य हैं। यद्यपि नाम से तो वे सभी समान हैं किन्तु गुणों की दृष्टि से, उनमें से कुछ ही धर्म उत्तम हैं।

पावंति केइ दुक्खं णारयतिरियकुमाणुस्सजोणीसु।
पावंति पुणो दुक्खं केई पुणु हीणदेवत्तं ॥12॥

प्राप्नुवन्ति केचिद्दुःखं नारकतिर्यक्कुमानुषयोनिषु।
प्राप्नुवन्ति पुनर्दुःखं केचित् पुनः हीनदेवत्वे॥12॥

कुछ प्राणी नरक में, पशु-पक्षी की योनि में तथा कुत्सित मनुष्ययोनि में दुःख भोगते हैं और कुछ देवत्व से हीन होने पर दुःख प्राप्त करते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पावंति केइ धम्मादो माणुससोक्खाइं देवसोक्खाइं।
अव्वावाहमणोवमअणंतसोक्खं च पावंति ॥13॥

प्राप्नुवन्ति केचिद्धर्मतः मानुषसौख्यानि देवसौख्यानि।
अव्याबाधमनुपमानन्तसौख्यं च प्राप्नुवन्ति ॥13॥

कुछ लोग धर्म के द्वारा मानव-सुखों तथा देव-सुखों को प्राप्त करते हैं तथा अव्याबाध, अनुपम और अनन्त सुखों को भोगते हैं।

तम्हा हु सव्वधम्मा परिक्खयव्वा णरेण कुसलेण।
सो धम्मो गहियव्वो जो दोसेहिं विवज्जिओ विमलो ॥14॥

तस्माद्धि सर्वधर्माः परीक्षितव्या नरेण कुशलेन।
स धर्मो गृहीतव्यो यो दोषैर्विवर्जितो विमलः ॥14॥

इसलिए कुशल मनुष्य को सभी धर्मों की परीक्षा करनी चाहिए और उसी धर्म का ग्रहण करना चाहिए जो दोषों से रहित अर्थात् निर्मल हो।

जत्थ वहो जीवाणं भासिज्जइ जत्थ अलियवयणं च।
जत्थ परदव्वहरणं सेविज्जइ जत्थ परयाणं ॥15॥
बहुआरंभपरिग्गहगहणं संतोस वज्जिअं जत्थ।
पंचुंबरमहुमांसं भक्खिज्जइ जत्थ धम्मम्मि ॥16॥
डंभिज्जइ जत्थ जणो पिज्जइ मज्ज च जत्थ बहुदोसं।
इच्छंति सो वि धम्मो केइ य अण्णाणिणो पुरिसा ॥17॥

यत्र वधो जीवानां भाष्यते यत्रालीकवचनं च।
यत्र परद्रव्यहरणं सेव्यते यत्र पराङ्गना ॥15॥
बह्वारम्भपरिग्रहग्रहणं सन्तोष वर्जितं यत्र।
पञ्चोदुम्बरमधुमांसानि भक्ष्यन्ते यत्र धर्मे ॥16॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दम्भ्यते यत्र जनः पीयते मद्यं च यत्र बहुदोषम्।
इच्छन्ति तमपि धर्मं केचिच्च अज्ञानिनः पुरुषाः ॥17॥

जहाँ जीवों का वध होता है; जहाँ असत्य वचन बोला जाता है; जहाँ पराये धन का हरण होता है और जहाँ परायी स्त्री का सेवन किया जाता है; जहाँ धर्म में अनेक प्रकार के आरम्भ हैं अर्थात् हिंसक योजनाएँ बनायी जाती हैं, परिग्रह का सञ्चय किया जाता है; जहाँ सन्तोष वर्जित है और गूलर आदि पाँच प्रकार के फल, मधु एवं मांस का भक्षण किया जाता है; जिस धर्म में लोगों को धोखा दिया जाता है और जिसमें बहुत-से दोषों वाली मदिरा पी जाती है—ऐसे (तथाकथित) धर्म को भी कुछ अज्ञानी पुरुष चाहते हैं।

जइ एरिसो वि धम्मो तो पुण सो केरिसो हवे पावो।
जइ एरिसेण सग्गो तो णरयं गम्मए केण॥18॥

यद्येतादृशोऽपि धर्मस्तर्हि पुनः तत्कीदृशं भवेत्पापम्।
यद्येतादृशेन स्वर्गः तर्हि नरके गम्यते केन॥18॥

यदि धर्म ऐसा भी होता है तो फिर पाप कैसा होता है? यदि इस प्रकार के धर्म से स्वर्ग प्राप्त होता है तो नरक किस प्रकार के धर्म से प्राप्त होता है?

जो एरिसियं धम्मं किज्जइ इच्छेइ सोक्खं भुंजेउं।
वावित्ता णिंबतरुं सो इच्छइ अंबफल्लाइं ॥19॥

य एतादृशं धर्मं करोति इच्छति सौख्यम् भोक्तुम्।
उप्त्वा निम्बतरुं स इच्छति आम्रफलानि ॥19॥

जो मनुष्य इस प्रकार के (तथाकथित) धर्म को करता है तथा सुख भोगना चाहता है, वह नीमवृक्ष का बीज बोकर आम के फल खाना चाहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धम्मोत्ति मण्णमाणो करेइ जो एरिसं महापावं।
सो उप्पज्जइ णरए अणेयदुक्खावहे भीमे ॥20॥

धर्म इति मन्यमानः करोति यः एतादृशं महापापम्।
स उत्पद्यते नरके अनेकदुःखपथे भीमे ॥20॥

'यही धर्म है' ऐसा मानकर जो पूर्वोक्त प्रकार का महापाप करता है, वह भयानक तथा अनेक दुःखों के मार्ग नरक में उत्पन्न होता है।

तत्थुप्पण्णं संतं सहसा तं पेक्खऊण णेरइया।
सरिऊण पुव्ववइरं धावंति समंतदो भीमा ॥21॥

तत्रोत्पन्नं सन्तं सहसा तं प्रेक्ष्य नारकाः।
स्मृत्वा पूर्ववैरं धावन्ति समन्ततो भीमाः ॥21॥

उस (पापी) को वहाँ उत्पन्न हुआ देखकर भयानक नरकवासी (उससे सम्बन्धित) पूर्वकालीन वैर का स्मरण करके सभी ओर से उस पर टूट पड़ते हैं।

असिफरसुमोग्गरसत्तितिसूलेहिं सेल्लकोंतेहिं।
कोहेण पज्जलंता पहरन्ति सरीरयं तस्स ॥22॥

असिपरशुमुद्गरशक्तित्रिशूलैः शेल्लकुन्तैः ॥
क्रोधेन प्रज्वलन्तः प्रहरन्ति शरीरकं तस्य ॥22॥

क्रोधाग्नि में जलते हुए वे (नरकवासी) तलवार, फरसा, गदा, शक्ति (एक प्रकार का अस्त्र), त्रिशूल तथा तीक्ष्ण भालों से उसके शरीर पर प्रहार करते हैं।

गहापहारविद्धो मुच्छं गंतूण महियले पट्टइ।
अइकंटएहिं तत्थ विभिज्जइ तिक्खेहिं सव्वंगं ॥23॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गदाप्रहारविद्धः मूर्च्छां गत्वा महीतले पतति।
अतिकण्टकैः तत्र विभिद्यते तीक्ष्णैः सर्वाङ्गम् ॥23॥

गदा के प्रहार से घायल वह (पापी) मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ता है और वहाँ स्थित पैने तथा अत्यधिक काँटों से उसका अंग-अंग बिंध जाता है।

लद्धूण चेयणाए पुणरवि चिंतेइ किं इमे सव्वे।
पहरन्ति मज्झ देहं जंपंता कडुयवयणाइं ॥24॥

लब्ध्वा चेतनां पुनरपि चिन्तयति किं इमे सर्वे ।
प्रहरन्ति मम देहं जल्पन्तः कटुकवचनानि ॥24॥

पुनः होश में आने पर वह विचार करता है कि ये सभी (नरकवासी) कटु वचन बोलते हुए, मेरे शरीर पर प्रहार क्यों कर रहे हैं ?

देवयपियरणिमित्तं मंतोसहिजंागभयणिमित्तेण ।
जं मारिया वराया अणेयजीवा मए आसि ॥25॥
जं परिमाणविरहिया परिग्गहा गिण्हिया मए आसि।
जं स्वाधं महुमंसं पंचुंबर जिव्हलुद्धेण ॥26॥
जं भासियं असच्चं तेणिक्कजं मए कयं आसि।
जं तिलमेत्तसुहत्थं परदारं सेवियं आसि ॥27॥
जं पीयं सुरयाणं जं च जणो डंभियो मए सव्वो।
तस्स हु पावस्स फलं जं जायं एरिसं दुक्खं ॥28॥

देवतापितृनिमित्तं मन्त्रौषधियागभयनिमित्तेन ।
ये मारिता वराका अनेकजीवा मया आसन् ॥25॥
यत् परिमाणविरहिताः परिग्रहाः गृहीता मया आसन्।
यत् खादितं मधुमांसं पञ्चोदुम्बराणि जिह्वालुब्धेन ॥26॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद् भाषितं असत्यं स्तेनकृत्यं मया कृतं आसीत्।
यत्तिलमात्रसुखार्थं परदाराः सेविता आसन् ॥27॥
यत्पीता सुरा यश्च जनो दम्भितो मया सर्वः।
तस्य हि पापस्य फलं यज्जातं एतादृशं दुःखम्॥28॥

(तब विभंगज्ञान से वह जानता है-) मन्त्र, औषधि, [illegible] के कारण देव और पितरों के निमित्त से जो मैंने अनेक जीव मारे थे; परिग्रह की मर्यादा न करके जो अतुल सम्पत्ति सञ्चित की थी तथा जीभ के लोभवश मैंने जो मधु, मांस तथा पाँच प्रकार के गूलर आदि उदुम्बर फलों का भक्षण किया था; जो असत्य बोला था, चोरी के कार्य किये थे तथा तिलभर (तुच्छ) सुख के लिए परायी स्त्रियों का सेवन किया था; जो मदिरापान किया था तथा सभी लोगों को धोखा दिया था; उसी पाप का फल है – जो मुझे इस प्रकार का (असहनीय) दुःख मिला है।

णाऊण एव सव्वं पुव्वभवे जं कयं महापावं।
अइतिव्ववेयणाओ असहंतो णासए सिग्घं ॥29॥

ज्ञात्वैवं सर्वं पूर्वभवे यत्कृतं महापापम्।
अतितीव्रवेदनां असहमानः नश्यति शीघ्रम् ॥29॥

इस प्रकार पूर्वजन्म में जो महापाप किया था उसके बारे में सब कुछ जानकर तथा अत्यन्त तीव्र वेदना को सहने में असमर्थ होकर वह शीघ्र भागने लगता है।

सो एवं णासंतो णरइयभयेण असरणो संतो।
पइसइ असिपत्तवणे अणेयदुक्खावहे भीमे ॥30॥

स एवं नश्यन् नारकभयेन अशरणः सन्।
प्रविशति असिपत्रवने अनेकदुःखपथे भीमे ॥30॥

इस तरह नारकीय भय से भागता हुआ वह असहाय होकर भयानक तथा अनेक दुःखों के मार्ग – असिपत्रवन अर्थात् एक प्रकार के नरक जहाँ वृक्षों के पत्ते तलवार की धार के समान तीक्ष्ण होते हैं, में प्रवेश करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ वि पडंति उवरिं फलाइं जट्टाइं असहणिज्जाइं।
लग्गंति जत्थ गत्ते सइ चुण्णं तत्थ कुव्वंति ॥31॥

तत्रापि पतन्ति उपरि फलानि जटानि असहनीयानि।
लगंति यत्र गात्रे सकृच्चूर्णं तत्र कुर्वन्ति ॥31॥

वहाँ उस असिपत्रवन में भी उसके ऊपर असहनीयं फल तथा जटायें गिरती हैं जो उसके शरीर पर लगती हैं तथा तुरन्त उसका चूर्ण बना देती हैं।

पत्ताइं पडंति तहा खंडयधारव्व सुट्ठु तिक्खाइं।
ताइं वि छिंदंति पुणो अंगोवंगाइं सव्वाइं ॥32॥

पत्राणि पतन्ति तथा खड्गधारावत् सुष्ठुतीक्ष्णानि ।
तान्यति छिन्दन्ति पुनः अङ्गोपाङ्गानि सर्वाणि ॥32॥

उसी प्रकार वहाँ तलवार के समान अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाले पत्ते गिरते हैं । वे भी उस के समस्त अंग-प्रत्यंगों को छेद डालते हैं।

णीसरिउं सो तत्थ वि असहंतो एरिसाइं दुक्खाइं।
वेएण धावमाणो पव्वयसिहरं समारुहइ ॥33॥

निःसृत्य स ततोऽपि असहमान एतादृशानि दुःखानि।
वेगेन धावन् पर्वतशिखरं समारोहति ॥33॥

इस प्रकार के दुःखों को सहन करने में असमर्थ होकर वह वहाँ (असिपत्रवन) से भी निकलकर तेजी से दौड़ता हुआ पर्वतशिखर पर चढ़ जाता है।

तत्थ वि पव्वयसिहरे णाणाविहसावया परमभीमा।
तिक्खणहकुडिलदाढा खादंति सरीरयं तस्स ॥34॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्रापि पर्वतशिखरे नानाविधश्वापदाः परमभीमाः।
तीक्ष्णनखवक्रदंष्ट्राः खादन्ति शरीरं तस्य ॥34॥

वहाँ पर्वतशिखर पर भी अत्यन्त भयानक तथा पैने नाखून और दाढ़ वाले तरह-तरह के वन्यपशु (श्वापद) उसके शरीर को खा डालते हैं।

तेसिं भएण पुणो धावंतो उत्तरेइ भूमीए।
गच्छइ वेयरणीए तिण्हाए पीडिओ संतो ॥35॥

तेषां भयेन पुनः धावन् उत्तरति भूमौ।
गच्छति वैतरण्यां तृष्णया पीडितः सन् ॥35॥

उन वन्यपशुओं के भय से पुनः दौड़ता हुआ वह (पर्वतशिखर से) भूमि पर उतरता है और प्यास से व्याकुल होकर वैतरणी नदी में जाता है।

सुक्को विजिज्झकंठो तत्थ जलं गेण्हऊण पिबमाणो।
उण्हेण तेण डज्झइ हत्थम्मि मुहम्मि ओठम्मि ॥36॥

शुष्कः विध्यकण्ठः तत्र जलं गृहीत्वा पिबन्।
उष्णेन तेन दह्यते हस्तयोः मुखे ओष्ठे ॥36॥

सूखे तथा बिंधे (घायल या चटकते) हुए गले वाला वह ज्यों ही जल को ग्रहण करके पीने लगता है, त्योंही वैतरणी के उस गर्म जल से उसके हाथ, मुख और ओष्ठ जलने लगते हैं।

भुक्खाए संतत्तो अलहंतो किंच्चि अण्णमाहारं।
वेयरणीए कूले गिण्हित्वा मट्टियं खाइ ॥37॥

बुभुक्षया संतप्तः अलभमानः किञ्चिदन्नमाहारम्।
वैतरण्याः कूले गृहीत्वा मृत्तिकां खादति ॥37॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोई भी खाद्य आहार न मिलने पर वह (पापी) भूख से संतप्त होकर वैतरणी के तट पर बैठकर मिट्टी खाने लगता है।

ताए पुणो वि डज्झइ लोहंगारेहिं पज्जलंताए।
घोराए कडुपाइअपूइयमयसाणगंधाए ॥38॥

तया पुनरपि दह्यते लोहाङ्गारैः प्रज्वलन्त्या।
घोरया कटुकपूतिमयश्वगन्धया ॥38॥

जिससे सड़े (मवाद पड़े) हुए कुत्ते जैसी घोर दुर्गन्ध आ रही है तथा लपटें उठ रही हैं ऐसी वैतरणी की मिट्टी भी लाल-लाल अंगारों से उसे जलाने लगती है।

सो एवं अच्छंतो णइकूले पिच्छिऊण णारइया।
कडुयाइं जंपमाणा पुणरवि धावंति पाविट्ठा ॥39॥

तमेवं तिष्ठन्तं नदीकूले दृष्ट्वा नारकाः।
कटुकानि जल्पन्तः पुनरपि धावन्ति पापिष्ठाः ॥39॥

उसे वैतरणी नदी के किनारे इस प्रकार बैठा हुआ देखकर अत्यन्त पापी नरकवासी कटुवचन बोलते हुए पुनः उसके पीछे भागते हैं।

वेएण वहंताए पतत्ततेलव्व पज्जलंताए।
वेयरणीए मज्झे चप्पंति अणप्पवसिया हु ॥40॥

वेगेन वहन्त्याः प्रतप्ततैलवत् प्रज्वलन्त्याः।
वैतरण्या मध्ये प्रविशन्ति अनात्मवशिका हि ॥40॥

अपने वश में न होने अर्थात् विवश होने से वे वेग से बहती हुई तथा खौलते हुए तेल की भाँति जलती हुई वैतरणी के मध्य प्रवेश करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थ वि पावइ दुक्खं डज्झंतो पज्जलंतसलिलेण ।
छोडीजंतसरीरो तिक्खाहिं सिलाहिं घोराहिं ॥41॥

तत्रापि प्राप्नोति दुःखं दहन् प्रज्वलितसलिलेन ।
स्पृष्टशरीरः तीक्ष्णाभिः शिलाभिः घोराभिः ॥41॥

वहाँ भी अत्यन्त तीक्ष्ण शिलाएँ उसके शरीर का स्पर्श करती हैं तथा खौलते हुए जल से जलता हुआ वह (पापी) दुःख प्राप्त करता है।

सो एवं बुडंतो कह वि किलेसेहि तत्थ णीसरए।
णीसरिओ वि हु संतो धरंति बंधंति णेरइया ॥42॥

स एवं ब्रुडन् कथमपि क्लेशैः ततो निःसरति ।
निःसृतमपि हि सन्तं धरन्ति बध्नन्ति नारकाः ॥42॥

इस प्रकार डूबता हुआ वह वहाँ से अर्थात् वैतरणी के जल से किसी तरह बाहर निकलता है। किन्तु उसे बचकर निकलता हुआ देखकर नरकवासी पुनः पकड़कर बाँध लेते हैं।

जस्स रडंतस्स पुणो उण्हाए णिक्खंति सिगदाए।
उद्धरिऊण सदेहं णासइ तं दुक्खमसहंतो ॥43॥

तं रुदन्तं पुनः उष्णायां निखनन्ति सिकतायाम् ।
उत्थाय स्वदेहं नाशयति तं दुःखमसहमानः ॥43॥

फिर रोते हुए उस (पापी) को वे नरकवासी गर्म रेत (बालू) में गाड़ देते हैं। जहाँ दुःख को सहन न कर पाता हुआ वह अपने शरीर को रेत में से निकालकर भागता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुणरवि धरंति भीमा णेरइया तस्स पावयम्मस्स।
मस्सउभछियं करंति हु छुहंति तह खारयंकम्मि ॥44॥

पुनरपि धरन्ति भीमा नारकास्तं पापकर्माणम्।
मांसमुद्भेदं कुर्वन्ति हि स्पृशन्ति क्षारकर्दमेन ॥44॥

किन्तु भयानक नारकी उस पापी को पुनः दबोच लेते हैं । वे उसका मांस निकालते हैं और उस पर क्षारयुक्त कीचड़ लगाते हैं (इस प्रकार उसे क्षोभित करते हैं)।

णीसरिऊण वराओ णासंतो खारयंकमट्ठओ।
पुव्वुत्तकमेण पुणो धरंति ते तस्स णारइया ॥45॥

निःसृत्य वराकः नश्यन् क्षारकर्दमात्।
पूर्वोक्तक्रमेण पुनः धरन्ति ते तं नारकाः ॥45॥

खारे कीचड़ से निकलकर वह बेचारा वहाँ से किसी प्रकार बच निकलकर पुनः भागता है। लेकिन वे नारकी उसे फिर दबोच लेते हैं।

मरणभयभीरुयाणं जीवाणं जो हु जीवियं हरइ।
णरयम्मि पावयम्मो पावइ तह बहुविहं दुक्खं ॥46॥

मरणभयभीरूणां जीवानां यो हि जीवितं हरति।
नरके पापकर्मा प्राप्नोति तथा बहुविधं दुःखम्॥46॥

जो मृत्यु से भयभीत प्राणियों के प्राणों का हरण करता है वह पापपूर्ण कर्म करने वाला नरक में इसी प्रकार बहुविध दुःख प्राप्त करता है।

पीलंति जहा इक्खू जंते छुहिऊण तस्स अवसस्स।
कुव्वंति चुण्णचुण्णं सव्वसरीरं मुसंढीहिं ॥47॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पेलयन्ति यथा इक्षून् यन्त्रे निधाय तमवशम्।
कुर्वन्ति चूर्णचूर्णं सर्वशरीरं मुशलैः ॥47॥

वे नारकी उस परवश (पापी) को उठाकर ईख की तरह कोल्हू (यन्त्र) में पेरते हैं। उसके सम्पूर्ण शरीर को वे मूसलों से कूट-कूटकर चूर्ण-चूर्ण कर देते हैं।

चक्केहिं करकचेहिं य अंगं फाडंति रोवमाणस्स।
सिंचंति पापयम्मा पुणरवि खारेण सलिलेण ॥48॥

चक्रैः क्रकचैश्च अङ्गं विदारयन्ति रुदतः।
सिञ्चन्ति पापकर्माणः पुनरपि क्षारेण सलिलेन ॥48॥

वे नारकी चक्र अर्थात् एक तीक्ष्ण गोल अस्त्र और आरों से, रोते हुए उस पापी के शरीर को फाड़ डालते हैं और फिर क्षारयुक्त जल से वे उस पापी को नहलाते हैं।

चंपंति सव्वदेहं तिक्खसलाएहिं अग्गिवण्णाहिं।
णहसंधिपएसेसु य भिंदंति जलंति सूईहिं ॥49॥

छिन्दन्ति सर्वदेहं तीक्ष्णशलाकाभिः अग्निवर्णाभिः।
नखसन्धिप्रदेशेषु च भिन्दन्ति ज्वलन्तीभिः सूचीभिः ॥49॥

वे आग के समान लाल तीक्ष्ण शलाकाओं (कीलों) से उसके समस्त शरीर को छेद डालते हैं और नाखूनों के सन्धिस्थलों पर जलती हुई सुइयाँ चुभाते (घुसाते) हैं।

पाडित्ता भूमीए पाएहि मलंति पावयम्मस्स।
सिंघाडयाण उवरिं अंगे वेएण लोदंति ॥50॥

पातयित्वा भूमौ पादैः मलन्ति पापकर्माणम्।
सिंघाटकानामुपरि अङ्गे वेगेन दोलयन्ति ॥50॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस पापकर्मा को भूमि पर गिराकर वे उसे पैरों से कुचलते हैं तथा उसके शरीर को सिंघाटक अर्थात् लोहे के यन्त्रविशेष के ऊपर रखकर तेजी से इधर-उधर रौंदते हैं।

अलियस्स फलेण पुणो गीवाए चंपिऊण पाएहिं।
तस्स य खणंति जीहा समूला हु णारइया ॥51॥

अलीकस्य फलेन पुनः ग्रीवां चम्पयित्वा पादैः।
तस्य च खनन्ति जिह्वां समूलां हि नारकाः ॥51॥

असत्यभाषण के फलस्वरूप फिर उसकी ग्रीवा को पैरों से दबाकर नरकवासी उसकी जीभ को समूल (जड़सहित) उखाड़ते हैं।

खंडंति दो वि हत्था तेणिक्कफलेण तिक्खवंसीए।
सूलम्मि छुहंति पुणो णारइया सुट्ठु तिक्खेहिं ॥52॥

खण्डयन्ति द्वावपि हस्तौ तेजितफलेन तीक्ष्णवंश्या।
शूलैः स्पर्शयन्ति पुनः नारकाः सुष्ठु तीक्ष्णैः ॥52॥

वे नरकवासी उसके दोनों हाथों को धातु के फलक के पैने सिरे से काट डालते हैं और फिर (उस पापी के शरीर में) जोर से पैना शूल (बर्छी या भाला) चुभाते हैं।

परदारस्स फलेण य आलिंगावंति लोहपडिमाओ।
ताओ डहंति अंगं तत्ताओ अग्गिवण्णाओ ॥53॥

परदाराणां फलेन च आलिङ्ग्यन्ति लोहप्रतिमाः।
ताः दहन्ति अङ्गं तप्ताः अग्निवर्णाः ॥53॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे नारकी, उस पापी की परस्त्री के सेवन की अभिलाषा के फलस्वरूप, उसका आग से तपी हुई (अतः) लाल लौह-प्रतिमाओं से आलिंगन करवाते हैं, जो प्रतिमाएँ उसके शरीर को जला डालती हैं।

तत्ताइं भूषणाइं चित्ते परिहावंति अग्गिवण्णाइं ।
ताइ वि डहंति अंगं परमहिलाहिलासेण फलेण ॥54॥

तप्तानि भूषणानि चित्ते परिधारयन्ति अग्निवर्णानि ।
तान्यति दहन्ति अङ्गं परमहिलाभिलाषेण फलेन ॥54॥

परस्त्रियों की अभिलाषा के फल के रूप में , वे नारकी उस पापी के वक्ष पर तपे हुए (अतः) आग की तरह लाल आभूषण धारण कराते हैं । वे आभूषण भी उसके शरीर को जलाते हैं ।

तस्स चडावंति पुणो णारइया कूडसम्मलीयाओ ।
तत्थ वि पावइ दुक्खं फाडिज्जंतम्मि देहम्मि ॥55॥

तम् आरोहयन्ति पुनः नारकाः कूटशाल्मलीषु ।
तत्रापि प्राप्नोति दुःखं विदारिते देहे ॥55॥

पुनः वे नारकी उस पापी को तीक्ष्ण काँटों वाले कूटशाल्मली वृक्ष पर चढ़ाते हैं । वहाँ भी वह देह के विदीर्ण होने पर दुःख प्राप्त करता है।

जे परिमाणविरहिया परिग्गहा गेण्हिया भवे अण्णे ।
तेसिं फलेण गरुयं सिलिं चडावन्ति खंधम्मि ॥56॥

ये परिमाणविरहिताः परिग्रहा गृहीता भवे अन्यस्मिन् ।
तषां फलेन गुरुकां शिलां धरन्ति स्कन्धे ॥56॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस पापी ने अन्य जन्म में जो असीम सम्पत्ति सञ्चित की थी, उसके फलस्वरूप वे उसके कन्धे पर एक भारी शिला रख देते हैं।

पायंति पज्जलंतं महुमज्जफलेण कलयं घोरं।
पंचुंबरफलभक्खणफलेन खावंति अंगारं ॥57॥

पाययन्ति प्रज्वलन्तं मधुमद्यफलेन लोहरसं घोरं।
पञ्चोदुम्बरफलभक्षणफलेन खादयन्ति अङ्गाराणि ॥57॥

मधु-मद्य पीने के फलस्वरूप उस पापी को वे जलता हुआ प्रचण्ड लौहद्रव (पिघला हुआ लोहा) पिलाते हैं तथा पाँच उदुम्बरफलों के भक्षण के फल के रूप में अंगारे खिलाते हैं।

मांसाहारफलेण य सव्वंगं सुट्ठुउव्व पीलंति।
वल्लूरम्मि पित्तया वा कप्पंति अणप्पवसियस्स ॥58॥

मांसाहारफलेन च सर्वाङ्गं सम्यक्रूपेण पीडयन्ति।
वालुकायाम् तप्तायां वा क्रमयन्ति अनात्मवशस्य ॥58॥

मांसाहार के फल के रूप में वे पापी के सभी अंगों को पीडित करते हैं। अथवा तपी हुई बालू पर उस पराधीन को चलाते हैं।

कुंभीपागेसु पुणो देहं पच्चंति पावयम्मस्स।
पीसंति पुणो पावा जं खंधं को वि भोगच्छी ॥59॥

कुम्भीपाकेषु पुनः देहं पाचयन्ति पापकर्मणः।
पेषयन्ति पुनः पापा यत्स्कन्धं कोऽपि भोगस्त्रीम् ॥59॥

जो कोई पापात्मा वेश्यागमन करता है उसके शरीर को वे कुम्भीपाक (एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेष प्रकार की यातना जिसमें पापीजन कुम्हार के बर्तनों की भाँति पकाये जाते हैं) में पकाते हैं और फिर उसके शरीर को पीसते हैं।

भूमीसमं देहं अल्लय चम्मं च तस्स खिलित्ता।
धावंति दुट्ठहियया तिक्खतिसूलेहिं णेरइया ॥60॥

भूमिसमं देहं आकल्प्य चर्म च तस्य खनित्वा।
धावन्ति दुष्टहृदयास्तीक्ष्णत्रिशूलैः नारकाः ॥60॥

दुष्टहृदय नरकवासी उस पापी के शरीर को भूमि के रूप में कल्पित करके उसकी चमड़ी को तीक्ष्ण त्रिशूलों से खोदते (जोतते) हुए दौड़ते हैं।

खायंति साणसीहावयवग्घा अयमण्हि दंतेहिं।
अट्ठावया सियाला मज्जारा किण्हसप्पा य ॥61॥

खादन्ति श्वसिंहवृकव्याघ्रा अयमितैः दन्तैः।
अष्टापदाः शृगाला मार्जाराः कृष्णसर्पाश्च ॥61॥

उस पापी के शरीर को कुत्ता, सिंह, भेड़िया, बाघ, अष्टपद (शरभ), सियार, बिलाव तथा काले साँप दाँतों से मनमानी करते हुए खाते हैं।

वायस्सगिद्धकंका पिपीलिया मक्कुणा तहा डंसा।
मसगा य महुयरीओ जलुआओ तिक्खतुंडाओ ॥62॥

वायसगृध्रकंकाः पिपीलिका मत्कुणास्तथा दंशाः।
मशकाश्च मधुकर्यः जलूकास्तीक्ष्णतुण्डाः ॥62॥

कौआ, गिद्ध, बगुला (कंक), चींटी, खटमल, डाँस, मच्छर, मधुमक्खी तथा नुकीली थूँथनी (मुँह) वाली जौंक भी (उस पापी के शरीर को मनमानी करते हुए खाते हैं)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंडंति एक्कपव्वं बहुदंडया हि णारइया।
पुव्वकयपावयम्मा भासंता कडुयवयणाओ ॥63॥
दण्डयन्ति एकपर्व बहुदण्डका हि नारकाः।
पूर्वकृतपापकर्माणो भाषमाणाः कटुकवचनानि ॥63॥

अनेक दण्ड धारण करने वाले नारकी कटु वचन बोलते हुए पूर्वभव में पापकर्म करने वाले प्राणी के एक ही भाग को निरन्तर दण्डित करते हैं ।

णारइयाणं वेरं छेत्तसहावेण होइ पावाणं।
मज्जारमूसयाणं जह वेरं उल्लसप्पाणं ॥64॥

नारकाणां वैरं क्षेत्रस्वभावेन भवति पापानाम्।
मार्जारिमूषकानां यथा वैरं नकुलसर्पाणाम् ॥64॥

पापी नारकों में क्षेत्रस्वभाव के कारण स्वाभाविक वैर होता है जैसे कि चूहे-बिल्ली में तथा नेवले और सर्प में स्वाभाविक वैर होता है।

सव्वे वि य णेरइया णपुंसया होंति हुंडसंठाणा।
सव्वे वि भीमरूवा दुल्लेसा दव्वभावेण ॥65॥

सर्वेऽपि च नारका नपुंसका भवन्ति हुण्डकसंस्थानाः।
सर्वेऽपि भीमरूपा दुर्लेश्या द्रव्यभावेन ॥65॥

सभी नारक हुण्डकसंस्थान वाले एवं नपुंसक होते हैं। वे सभी भयंकर रूप वाले तथा द्रव्यभाव से दुर्लेश्य (दुर्लभ या कठिनाई से चोट पहुँचाने योग्य) होते हैं।

णिरए सहाव दुक्खं होइ सहावेण सीयउण्हं य।
तह हुंति दुस्सहाओ घोराओ भुक्खतण्हाओ ॥66॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरके स्वभावेन दुःखं भवति स्वभावेन शीतोष्णे च।
तथा भवतः दुःसहे घोरे क्षुत्तृष्णे ॥66॥

नरक में स्वभावतः ही दुःख होता है तथा स्वभावतः ही सर्दी-गर्मी होती है। उसी प्रकार वहाँ स्वभावतः दुःसह घोर भूख-प्यास होती है।

जइ वि खिविज्जे कोई णरए गिरिरायमेत्तलोहुंडं।
धरणियलमपावेंतो उण्हेण विलिज्जए सव्वो ॥67॥

यद्यपिक्षिपेत्कश्चित्नरकेगिरिराजमात्रलोहखण्डम्।
धरणीतलमप्राप्नुवन् उष्णेन विलीयते[1] सर्वः ॥67॥

यदि कोई उष्ण नरक भूमि पर पर्वतराज के बराबर लोहे का टुकड़ा फैंके तो वह लौहखण्ड भूमि पर पहुँचने से पहले ही (पिघलकर) विलीन हो जाता है।

(यहाँ नरकवास की तीव्रतम उष्णता का चित्रण है।)

तित्तियमेत्तो लोहो पज्जलिओ सीयणरयमज्झम्मि।
जइ पिक्खविज्जे कोई सडिज्ज भूमिमपावंतो ॥68॥

तावन्मात्रं लोहं प्रज्वलितं[2] शीतनरकमध्ये।
यदि प्रक्षिपेत् कश्चित् घनीभवति भूमिमप्राप्नुवन् ॥68॥

उतना ही (पर्वतराज के बराबर) प्रज्वलित अर्थात् पिघला हुआ लोहे का टुकड़ा यदि कोई शीतनरक के मध्य फैंके तो वह भूमि पर पहुँचने से पहले ही ठोस रूप धारण कर लेता है।

(यहाँ नरकवास की तीव्रतम शीतवेदना का चित्रण है।)

---

1. द्रवीभवति
2. द्रवीभूतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णेरयाणं तण्हा तारसिया होइ पावयम्माणं।
जा सव्वसमुद्देहिं या पीएहिं ण उवसमं जाइ ॥69॥

नारकाणां तृष्णा तादृशी भवति पापकर्मणाम्।
या सर्वसमुद्रेषु च पीतेषु न उपशमं याति ॥69॥

पापकर्म करने वाले नरकवासियों को ऐसी प्यास लगती है कि वह समस्त समुद्रों का जल पी लेने पर भी शान्त नहीं हो सकती।

तारिसिया होइ छुहा णरयम्मि अणोवमा परमघोरा।
जा तिहूयणे वि सयले खद्धम्मि ण उवसमं जाइ ॥70॥

तादृशी भवति क्षुत् नरके अनुपमा परमघोरा।
या त्रिभुवनेऽपि सकले खादिते न उपशमं याति ॥70॥

नरक में ऐसी अनुपम तथा अत्यन्त तीव्र भूख लगती है जो कि तीनों लोकों को पूरी तरह खा लेने पर भी शान्त नहीं हो सकती।

चुण्णीकओ वि देहो तक्खणमेत्तेण होइ संपुण्णो।
तेसिं अउण्णयाले मिच्चू ण होइ पावाणं ॥71॥

चूर्णीकृतोऽपि देहस्तत्क्षणमात्रेण भवति सम्पूर्णः।
तेषामपूर्णकाले मृत्युर्नभवति पापानाम् ॥71॥

नरक में चूर-चूर कर देने पर भी शरीर तत्क्षण सम्पूर्ण हो जाता है तथा (नरक की) अवधि पूर्ण होने से पहले उन पापियों की मृत्यु नहीं होती है।

उप्पण्णसमयपहुदी आमरणंतं सहंति दुक्खाइं।
अच्छिणिमीलयमेत्तं सोक्खं ण लहंति णेरइया ॥72॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्नसमयप्रभृत्यामरणान्तं सहन्ते दुःखानि।
अक्षिनिमीलनमात्रं सौख्यं न लभन्ते नारकाः ॥72॥

नरकवासी उत्पत्तिकाल से लेकर मृत्यु-पर्यन्त दुःखों को सहते हैं तथा उन्हें पलक झपकने भर (क्षणमात्र) के लिये भी सुख प्राप्त नहीं होता।

एवं णरयगईए बहुप्पयाराइं होंति दुक्खाइं।
बहुकालेण वि ताइं ण य सक्किजंति वण्णेउं ॥73॥

एवं नरकगतौ बहुप्रकाराणि भवन्ति दुःखानि।
बहुकालेनापि तानि न च शक्नुवन्ति वर्णयितुम् ॥73॥

इस प्रकार नरकगति में बहुत प्रकार के दुःख होते हैं। दीर्घकाल में (लम्बे समय तक वर्णन करते रहने पर) भी उनका वर्णन नहीं किया जा सकता।

इदी णरयगइ सम्मत्ता।
इति नरकगतिः समाप्ता।

इस प्रकार नरकगति का वर्णन समाप्त हुआ।

—0—

उव्वरिऊण य जीवो णरयगईदो फलेण पावस्स।
पुणरवि तिरियगईए पावेइ अणेयदुक्खाइं ॥74॥

उद्वर्त्य च जीवो नरकगतितः फलेन पापस्य।
पुनरपि तिर्यग्गत्यां प्राप्नोति अनेकदुःखानि ॥74॥

जीव पाप के फलस्वरूप नरक गति से उबरकर तिर्यक्गति (पशु-पक्षी-योनि) में पुनः अनेक दुःख प्राप्त करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व (वा) हिज्जइ गुरुभारं णेच्छंतो पिट्टिऊण लोएहिं।
पुव्वकयपावयम्मो छोडिज्जंतीए पुट्ठीए ॥75॥

वाह्यते गुरुभारं नेच्छन् ताडयित्वा लोकैः।
पूर्वकृतपापकर्मा छिन्द्यन्त्या पृष्ठ्या ॥75॥

पूर्व में पापकर्म करने वाला जीव (तिर्यक्गति में) न चाहता हुआ भी, लोगों के द्वारा पीटा जाता हुआ छिली हुई (घायल) पीठ पर अत्यधिक भार ढोता है।

ताडणतासणदुक्खं बंधण तह णासविंधणं दमणं।
कण्छेदणदुक्खं लंछण णिल्लंछणं चेय ॥76॥

ताडनत्रासनदुःखं बन्धनं तथा नासावेधनं दमनम्।
कर्णच्छेदनदुःखं लाञ्छनं निलाञ्छनं चैव ॥76॥

वह पापी तिर्यक्गति में पीटा जाना, डराया जाना, बन्धन, नासिका में छिद्र किया जाना, दमन, कान में छिद्र किया जाना, दागकर चिह्न बनाया जाना तथा उस चिह्न को मिटाया जाना आदि दुःखों को सहता है।

सीउण्हं जलवरिसं चउमहिमारुवं छुहा तण्हा।
णाणाविहवाहीओ सहइ तहा दंसमसया य ॥77॥

शीतोष्णे जलवर्षां चरमहिमपातं क्षुधां तृष्णां।
नानाविधव्याधीश्च सहते तथा दंशमशकांश्च ॥77॥

वह तिर्यक्गति में सर्दी-गर्मी, जलवर्षा, अत्यधिक हिमपात, भूख, प्यास, विविध प्रकार के रोगों, डाँस तथा मच्छरों (से उत्पन्न कष्ट) को सहता है।

एइंदिएसु पंचसु अणेयजोणीसु वीरियविहूणो।
भुंजंतो पावफलं चिरकालं हिंडए जीवो ॥78॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रियेषु पञ्चसु अनेकयोनिषु वीर्यविहीनः।
भुञ्जानः पापफलं चिरकालं हिण्डते जीवः ॥78॥

वह जीव शक्तिहीन होकर एकेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय इत्यादि अनेक योनियों में पाप का फल भोगता हुआ दीर्घकाल तक भटकता रहता है।

खणणुत्तावणवालणवीहणविच्छेयणाइं दुक्खाइं।
पुव्वकयपावयम्मो सहइ वराओ अणप्पवसो ॥79॥

खननोत्तापनज्वालनविहनविच्छेदनादिदुःखानि।
पूर्वकृतपापकर्मा सहते वराकः अनात्मवशः ॥79॥

पूर्व में पापकर्म करने वाला बेचारा जीव (तिर्यक्गति में) परवश होकर खोदा या गाड़ा जाना, तपाया जाना, जलाया जाना, जोर से आघात किया जाना, काटा जाना आदि दुःखों को सहता है।

एवं तिरियगइ सम्मत्ता ।
एवं तिर्यग्गतिः समाप्ता ।

इस प्रकार तिर्यक्गति का वर्णन समाप्त हुआ।

———o———

बहुवेयणाउलाए तिरियगईए भमित्तु चिरकालं।
माणुसहवे वि पावइ पावस्स फलाइं दुक्खाइं ॥80॥

बहुवेदनाकुलायां तिर्यग्गतौ भ्रमित्वा चिरकालम्।
मानुषभवेऽपि प्राप्नोति पापस्य फलानि दुःखानि ॥80॥

अनेक वेदनाओं से युक्त तिर्यक्गति में लम्बे समय तक भटककर जीव मनुष्यभव में भी पाप के फल के रूप में दुःखों को प्राप्त करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारसियभिल्लबब्बरचंडालकुलेसु पावयम्मेसु ।
उपज्जिऊण जीवो भुंजइ णिरओवमं दुक्खं ॥81॥

पारसीकभिल्लबर्बरचण्डालकुलेषु पापकर्मसु ।
उत्पद्य जीवो भुङ्क्ते नरकोपमं दुःखम् ॥81॥

मनुष्यभव में भी जीव पापकर्म करने वाले पारसी, भील, बर्बर, चण्डाल आदि कुलों में जन्म लेकर नरक के समान ही दुःखों को भोगता है।

जइ पावइ उच्चत्तं चिरकालं पाविऊण णीयत्तं ।
ठिविं गब्भयहुदियं पावेइ अणेय दुक्खाइं ॥82॥

यदि प्राप्नोति उच्चत्वं चिरकालं प्राप्य नीचत्वं ।
तत्रापि गर्भभवानि प्राप्नोति अनेकदुःखानि ॥82॥

यदि वह चिरकाल तक निम्नकुलों में जन्म लेकर अन्त में उच्चता (उच्चकुल) को प्राप्त करता है तो वहाँ भी उसे गर्भ में होने वाले अनेक दुःख तो प्राप्त होते ही हैं।

जम्मंधमूयबहिरो उप्पजइ सो फलेण पावस्स ।
उप्पण्णदिवसपहुई पीडिज्जइ घोरवाहीहिं ॥83॥

जन्मान्धमूकवधिर उत्पद्यते स फलेन पापस्य ।
उत्पन्नदिवसप्रभृतितः पीड्यते घोरव्याधिभिः ॥83॥

वह (पूर्वकृत) पाप के फलस्वरूप जन्म से ही अन्धा, गूँगा तथा बहरा उत्पन्न होता है तथा जन्मदिवस से लेकर घोर व्याधियों से पीड़ित रहता है।

णवजोवणं पि पत्तो इच्छियसुक्खं ण पावए किंपि ।
गच्छइ जोवणकालो सव्वो वि णिरच्छओ तस्स ॥84॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवयौवनमपि प्राप्तः इच्छितसुखं[1] न प्राप्नोति किमपि।
गच्छति यौवनकालः सर्वोऽपि निरर्थकस्तस्य ॥84॥

नवयौवन को पाकर भी वह कोई भी अभीष्ट सुख (या स्त्रीसुख) प्राप्त नहीं कर पाता है तथा उसकी सम्पूर्ण युवावस्था निरर्थक ही व्यतीत हो जाती है।

धणुबंधविप्पहीनो भिक्खं भमिऊण भुंजए णिच्चं ।
पुव्वकयपावयम्मो सुयणो वि ण यच्छए सोक्खं ॥85॥

धनबान्धवविप्रहीनो भिक्षां भ्रमित्वा भुङ्क्ते नित्यम् ।
पूर्वकृतपापकर्मा सुजनोऽपि न ऋच्छति सौख्यम् ॥85॥

वह धन तथा बन्धु-बान्धवों से रहित होकर सर्वदा भिक्षाटन करके भोजन करता है। इस प्रकार पूर्व में पाप करने वाला जीव सज्जन होकर भी सुख नहीं पाता है।

पसुमणुविगईए एवं हिंसालियचोरियाइदोसेहिं ।
बहुदुक्खेहिं वराओ चिरकालं पावए जीवो ॥86॥

पशुमनुष्यगतौ एवं हिंसालीकचौर्यादिदोषैः।
बहुदुःखानि वराकः चिरकालं प्राप्नोति जीवः ॥86॥

इस प्रकार पशु तथा मनुष्य गति में बेचारा जीव हिंसा, असत्य, चोरी आदि दोषों के कारण दीर्घकाल तक अनेक दुःखों को प्राप्त करता है।

एवं कुमानुसगई सम्मत्ता ।
एवं कुमानुषगतिः समाप्ता ।

इस प्रकार कुमनुष्यगति का वर्णन समाप्त हुआ।

———o———

1. स्त्रीसुखं वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्व (ण्हु) वयणवज्जिय बालतवं कुणइ णरो मूढो ।
सो णर पावेइ उवरि लोए हीणदेवत्तं ॥87॥

सर्वज्ञवचनं वर्जयित्वा बालतपं करोति नरो मूढः ।
स नरः प्राप्नोति ऊर्ध्वलोके हीनदेवत्वम् ॥87॥

जो मूढ मनुष्य सर्वज्ञ के वचनों को त्यागकर बालतप (अबोधपूर्वक तप) करता है। वह बालतप के फलस्वरूप उर्ध्वलोक (देवगति) में हीनदेवत्व को प्राप्त करता है।

दट्ठूण अण्णदेवे महिड्ढिए दिव्ववण्णमारोगं ।
होऊण माणभंगो चित्ते उप्पज्जए दुक्खं ॥88॥

दृष्ट्वा अन्यदेवेषु महर्धिकेषु दिव्यवर्णमारोग्यम् ।
भूत्वा मानभङ्गः चित्ते उत्पद्यते दुःखम् ॥88॥

(देवगति में) अन्त्यन्त समृद्धिशाली देवों के दिव्यवर्ण तथा आरोग्य को देखकर उसका घमण्ड चूर-चूर हो जाता है तथा उसके हृदय में दुःख उत्पन्न होता है।

तिलोयसव्वसरणं धम्मो सव्वण्हुभाविओ विमलो ।
तइयामएण गहिओ तेण महंतारिओ एहिं ॥89॥

त्रिलोकसर्वशरणं धर्मः सर्वज्ञभावितो विमलः ।
तस्यागमेन गृहीतस्तेन महत्तारकः एवम् ॥89॥

तब उसके हृदय में तीनों लोकों के शरणस्थानरूप, सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट निर्मल धर्म का आगमन होता है और वह उस महान् उद्धारक धर्म को ग्रहण करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छम्मासाउगसेसे विलाइ माला विणस्सए छाए ।
कंपंति कप्परुक्खा होइ विरागो य भोयाणं ॥90॥

षण्मासायुष्कशेषे विलीयते माया विनश्यति छाया ।
कम्पन्ते कल्पवृक्षा भवति विरागश्च भोगेभ्यः ॥90॥

मात्र छः मास की आयु शेष रह जाने पर माया विलीन हो जाती है, छाया (असत्य कल्पना) नष्ट हो जाती है, कल्पवृक्ष काँपने लगते हैं और तब उस जीव को भोगों से वैराग्य हो जाता है।

बहुणट्टगीयसाला णाणाविहकप्पतरुवराइण्णे ।
भो सुरलोयपहाणा णक्खयपडंतयं विसमं ॥91॥

बहुनृत्यगीतशाला नानाविधकल्पतरुवराकीर्णाः ।
भोः सुरलोकप्रधानाः नक्षत्रे पतन्ति विषमे ॥91॥

विविध प्रकार के कल्पतरु आदि देववृक्षों से घिरी हुई अनेक नृत्य-गीत-शालाएँ तथा देवलोक के प्रधान—सभी विषम दशा में पड़ जाते हैं।

वसियव्वं कुच्छीए कुणिमाए किमिकुलेहिं भरियाए।
पीयव्वं कुणिमपयं जणणीए मे अहम्मेण ॥92॥

वस्तव्यं कुक्ष्यां कुणपायां कृमिकुलैः भृतायाम् ।
पातव्यं कुणपपयं जनन्या मया अधर्मेण ॥92॥

(वह सोचने लगता है कि अब) पापाचरण के कारण मुझे कीड़ों से भरी हुई बदबूदार कुक्षि (गर्भाशय) में रहना होगा तथा माता के दुर्गन्धयुक्त या घृणित पेय को पीना होगा। तात्पर्य यह है कि गर्भकाल में माता के रज आदि का पान करना होगा।

सो एवं विलवंतो पुण्णवसाणम्मि असरणो संतो ।
मूलच्छिण्णो वि दुमो णिवडइ हेट्ठामुहो दीणो ॥93॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स एवं विलपन् पुण्यावसानेऽशरणः सन्।
मूलच्छिन्नोऽपि द्रुमः निपतति अधोमुखो दीनः ॥93॥

इस प्रकार विलाप करता हुआ वह दीन जीव पुण्यों के समाप्त हो जाने पर असहाय होकर अधोगति को प्राप्त होता है, जैसे कि जड़ के कट जाने पर वृक्ष नीचे की ओर गिर पड़ता है।

एवं देवगई सम्मत्ता।
एवं देवगतिः समाप्ता।

इस प्रकार देवगति का वर्णन समाप्त हुआ।

———o———

एवं अण्णइकाले जीओ संसारसायरे घोरे।
परिहिंडइ अलहंतो धम्मं सव्वण्हुपण्णत्तं ॥94॥

एवमनादिकाले जीवः संसारसागरे घोरे।
परिहिण्डते अलभमानो धर्मं सर्वज्ञप्रणीतम् ॥94॥

इस प्रकार जीव सर्वज्ञ के द्वारा प्रतिपादित धर्म को प्राप्त न करके अनादिकाल से घोर संसार-सागर में भटक रहा है।

परिचइऊण कुधम्मं तम्हा सव्वण्हुभासिओ धम्मो।
संसारुत्तरणट्ठं गहियव्वो बुद्धिमंतेहिं ॥95॥

परित्यज्य कुधर्मं तस्मात् सर्वज्ञभाषितो धर्मः।
संसारतरणार्थं गृहीतव्यो बुद्धिमद्भिः ॥95॥

अतः बुद्धिमानों को कुधर्म का परित्याग करके संसार को पार करने के लिए सर्वज्ञ के द्वारा उपदिष्ट धर्म को ग्रहण करना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वण्हू वि य णेया लोए बह्माणहरिहराईया।
तम्हा परिक्खियव्वा सव्वेण णरेण कुसलेण ॥96॥

सर्वज्ञा अपि च ज्ञेया लोके ब्रह्महरिहरादिकाः।
तस्मात् परीक्षितव्या सर्वैः नरैः कुशलैः ॥96॥

लोक में ब्रह्मा, हरि (विष्णु) तथा हर (शंकर) आदि को भी सर्वज्ञ के रूप में जाना जाता है। अतः सभी कुशल मनुष्यों को उनकी परीक्षा (परख) करनी चाहिए।

खट्टंगकपालहरो डमरुय वज्जंत भीसणायारो।
णच्चइ पिसायसहिओ रयणीए पिउवणे भीमे ॥97॥
जो तिक्खदाढभीसणपिंगलणयणेहि दाहिणमुहेण।
भक्खेइ सव्वजीवे सो परमप्पो कहं होइ ॥98॥

खट्वाङ्गकपालधरः डमरुकं वादयन् भीषणाकारः।
नृत्यति पिशाचसहितः रजन्यां पितृवने भीमे ॥97॥
यः तीक्ष्णदाढभीषणपिङ्गलनयनैः दाहकमुखेन।
भक्षयति सर्वजीवान् स परमात्मा कथं भवति ॥98॥

जो खट्वाङ्ग (सोटा या लकड़ी जिसके सिरे पर खोपड़ी जड़ी हो) तथा कपाल धारण करता है, डमरू बजाता है, भयानक आकृति वाला है, पिशाचों के साथ रात में भयंकर श्मशान में नृत्य करता है, जो पैनी दाढ़ वाले तथा पीले भीषण नेत्रों वाले दाहक मुख से समस्त जीवों को खा जाता है ,वह परमात्मा कैसे हो सकता है ?

अहवा सो परमप्पो जइ होइ जयम्मि दोसजुत्तो वि।
ता भीसणरूओ (पुण) णिसायरो केरिसो होइ ॥99॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा स परमात्मा यदि भवति जगति दोषयुक्तोऽपि।
तर्हि भीषणरूपः पुनः निशाचरः कीदृशो भवति॥99॥

अथवा दोषयुक्त होकर भी, भीषण रूप वाला वह शंकर यदि जगत् में परमात्मा हो सकता है, तो फिर निशाचर कैसा होता है ?

जो वहइ सिरे गंगा गिरिवधू वहइ अद्धदेहेन।
णिच्चं भारक्कंतो कावडिवाहो जहा पुरिसो॥100॥
जइ एरिसो वि लोए कामुम्मत्तो वि होइ परमप्पो।
तो कामुम्मत्तमणा घरे घरे किं ण परमप्पा॥101॥

यो वहति शिरसि गङ्गां गिरिवधूं वहति अर्धदेहेन।
नित्यं भाराक्रान्तः कावटिकावाहो यथा पुरुषः॥100॥
यदि एतादृशोऽपि लोके कामोन्मत्तोऽपि भवति परमात्मा।
तर्हि कामोन्मत्तमनसः गृहेगृहे किं न परमात्मानः॥101॥

जो सिर पर गंगा कोधारण करता है तथा शरीर के आधे भाग से पार्वती को धारण करता है, सर्वदा कावड़धारी पुरुष की भाँति भार से आक्रान्त रहता है; यदि इस प्रकार का काम से उन्मत्त व्यक्ति भी लोक में परमात्मा हो सकता है, तो फिर घर-घर में काम से उन्मत्त मन वाले लोग परमात्मा क्यों नहीं हो सकते ?

जो दहइ एयगामं वुच्चइ लोयम्मि सो वि पाविट्ठो।
दड्ढं पि जेण तिउरं परमप्पत्तं कहं तस्स॥102॥

यो दहति एकग्रामं उच्यते लोके सोऽपि पापिष्ठः।
दग्धमपि येन त्रिपुरं परमात्मत्वं कथं तस्य॥102॥

जो मनुष्य एक गाँव को जलाता है उसे संसार में अत्यन्त पापी (अधम) कहा जाता है, तो फिर जिसने त्रिपुर (द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा भूलोक में मय दानव के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा निर्मित सोने, चाँदी और लोहे के तीन नगरों) का दहन किया वह परमात्मा कैसे हो सकता है ?

रण्णे तवं करंतो दट्ठूण तिलोत्तमाए लावण्णं ।
बम्महसरेहिं विद्धो तवभट्ठो चउमुहो जाओ ॥103॥

अरण्ये तपः कुर्वन् दृष्ट्वा तिलोत्तमाया लावण्यम् ।
ब्रह्मा शरैः विद्धः तपोभ्रष्टः चतुर्मुखो जातः ॥103॥

वन में तपस्या करता हुआ चतुर्मुख ब्रह्मा तिलोत्तमा के सौन्दर्य को देखकर कामबाणों से घायल हो गया अतः तप से भ्रष्ट हो गया।

कामाग्गितत्तचित्तो इच्छयमाणो तिलोवमारूवं ।
जो रिच्छीभत्तारो जादो सो किं होइ परमप्पो ॥104॥

कामाग्नितप्तचित्तः इच्छन् तिलोत्तमारूपम् ।
य ऋक्षिभर्त्ता जातः स किं भवति परमात्मा ॥104॥

कामाग्नि से संतप्त हृदय वाला जो व्यक्ति तिलोत्तमा के रूप को चाहता हुआ रीछनी अर्थात् जामवंत की पुत्री जामवंती का भी पति बन गया, वह परमात्मा कैसे हो सकता है ?

जइ एरिसो वि मूढो परमप्पा वुच्चए एवं।
तो खरघोडाईया सव्वे वि य होंति परमप्पा ॥105॥

यदि एतादृशोऽपि मूढः परमात्मा उच्यते एवम् ।
तर्हि खरघोटकादिकाः सर्वेऽपि च भवन्ति परमात्मानः ॥105॥

यदि इस प्रकार के मूढ व्यक्ति को भी परमात्मा कहा जा सकता है तब तो गधे-घोड़े आदि सभी जीव परमात्मा हो जायेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जलथलआयासयले सव्वेसु वि पव्वएसु रुक्खेसु ।
तिणजलकट्टपाहणाइसु जो परिवसइ महुमणो ॥106॥
होऊण परमदेवो कण्हो परिवसइ जए सव्वे ।
तो छेयणाइओ सो पावइ दुक्खं किण्ण किरियाओ ॥107॥

जलस्थलाकाशतले सर्वेषु अपि पर्वतेषु वृक्षेषु ।
तृणज्वलनकाष्ठपाषाणादिषु यो परिवसति मधुमथः ॥106॥
भूत्वा परमदेवः कृष्णः परिवसति जगति सर्वस्मिन् ।
तर्हि छेदनादितः स प्राप्नोति दुःखं किं न क्रियातः ॥107॥

जो मधुरिपु (मधु नामक दानव का संहारक) जल, स्थल, आकाश, सभी पर्वतों एवं वृक्षों, तृण (घास), अग्नि, काष्ठ, पत्थर आदि में निवास करता है; अथवा जो कृष्ण परम देव होकर समस्त विश्व में निवास करता है; तो उसे छेदन आदि क्रियाओं से दुःख क्यों नहीं प्राप्त होगा ? अर्थात् अवश्य प्राप्त होता होगा।

संसारम्मि वसंतो परमप्पो जइ जए हवे कण्हो ।
संसारत्था जीवा सव्वे ते किण्ण परमप्पा ॥108॥

संसारे वसन् परमात्मा यदि जगति भवेत् कृष्णः ।
संसारस्था जीवाः सर्वे ते किं न परमात्मानः ॥108॥

यदि संसार में निवास करता हुआ वह कृष्ण परमात्मा है तो संसार में स्थित समस्त जीव परमात्मा क्यों नहीं हो सकते ?

हरिहरबह्मणो वि य महाबला सव्वलोयविक्खादा ।
तिण्णि वि एक्कसरीरा तिण्णि वि लोए वि परमप्पा ॥109॥
जइ होइ एयमुत्ती बम्हाण तिलोयणाय महुमहणो ।
तो बम्हाणस्स सिरं हरेण किं कारणं छिण्णं ॥110॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिहरब्रह्माणोऽपि च महाबला सर्वलोकविख्याताः।
त्रयोऽपि एकशरीराः त्रयोऽपि लोकेऽपि परमात्मानः॥109॥
यदि भवति एकमूर्तिः ब्रह्मा त्रिलोकनाथः मधुमथः।
तर्हि ब्रह्मणः शिरो हरेण किं कारणं छिन्नम्॥110॥

समस्त लोकों में विख्यात हरि (विष्णु), हर (शंकर) तथा ब्रह्मा महाबली, तीनों एक शरीर वाले अर्थात् अभिन्न हैं और तीनों ही लोक में परमात्मा के रूप में विश्रुत हैं। पुनः यदि ब्रह्मा, त्रिलोचन (शंकर) तथा मधुरिपु (विष्णु) ये तीनों एकमूर्ति अर्थात् अभिन्न हैं, तो फिर ब्रह्मा का सिर शंकर के द्वारा कैसे काट दिया गया ?

णेच्छइ थावरजीवं जंगमजीवेसु संसओ जस्स।
मंसं जस्स अदोसं कह बुद्धो होइ परमप्पा॥111॥

नेच्छति स्थावरजीवं जङ्गमजीवेषु संशयो यस्य।
मांसं यस्यादोषं कथं बुद्धो भवति परमात्मा॥111॥

जो स्थावर अर्थात् पृथ्वी, अपस्, अग्नि, वायु और वनस्पति को जीव नहीं मानता है और त्रस (जंगम) जीवों के अस्तित्व में भी जिसे सन्देह है अर्थात् जो अनात्मवादी है; जिसने मांसाहार को निर्दोष माना है वह बुद्ध परमात्मा कैसे हो सकता है ?

णिये[1] जणणीए पेट्टं[2] जो फाडिऊण णिग्गओ बहिरं[3]।
अण्णेसिं जीवाणं कह होइ दयावरो बुद्धो॥112॥

निजजनन्या उदरं यो विदार्य निर्गतो बहिः।
अन्येषां जीवानां कथं भवति दयापरो बुद्धः॥112॥

---

1. नियं
2. पोटं
3. वहं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो अपनी माता के पेट को फाड़कर बाहर निकल आया वह बुद्ध अन्य जीवों के प्रति दयावान् कैसे हो सकता है ?

जो अप्पणो सरीरे ण समत्थो वाहिवेयणा छेउं ।
अण्णेसिं जीवाणं कह वाहिं णासए सूरो ॥113॥

य आत्मनः शरीरे न समर्थो व्याधिवेदनां छेत्तुम् ।
अन्येषां जीवानां कथं व्याधिं नाशयति सूरः[1] ॥113॥

जो अपने शरीर में स्थित व्याधिजन्य वेदना (पीडा) का भी नाश करने में समर्थ नहीं है, वह सूर्य अन्य जीवों की व्याधि का नाश कैसे कर सकता है ? [यह कथन चन्द्रमा (सोम), बुद्ध तथा श्वेताम्बरों में मान्य महावीर के सम्बन्ध में भी संगत हो सकता है।]

ण समत्थो रक्खेउं सयमवि खे राहुणा गसिज्जंतो ।
कह सो होइ समत्थो रक्खेउं अण्णजीवाणं ॥114॥

न समर्थो रक्षितुम् स्वयमपि खे राहुणा ग्रसमानः ।
कथं स भवति समर्थो रक्षितुम् अन्य जीवान् ॥114॥

आकाश में राहु के द्वारा ग्रसित किया जाता हुआ जो सूर्य स्वयं की भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है वह अन्य जीवों की रक्षा करने में समर्थ कैसे हो सकता है ?

जइ ते हवंति देवा एए सव्वे वि हरिहराईया ।
तो तिक्खपहरणाइं गिण्हंति करेण णिकज्जं ॥115॥

यदि ते भवन्ति देवा एते सर्वेऽपि हरिहरादिकाः ।
तर्हि तीक्ष्णप्रहरणानि गृह्णन्ति करेण किमर्थम् ॥115॥

---

1. सूर्यः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि पूर्वोक्त हरि (विष्णु), हर (शंकर) आदि सभी देव हैं तो वे हाथ में तीक्ष्ण शस्त्रों को किसलिए धारण करते हैं ?

जस्स त्थि भयं वि(चि) त्ते सो गिण्हइ आउहं करग्गेणा
जस्स पुणो णत्थि भयं तस्साउहकारणं णत्थि ॥116॥

यस्यास्ति भयं चित्ते स गृह्णाति आयुधं कराग्रेण ।
यस्य पुनर्नास्ति भयं तस्यायुधकारणं नास्ति ॥116॥

क्योंकि जिसके मन में भय है वही हाथ में आयुध (शास्त्रास्त्र) धारण करता है, किन्तु जिसे किसी का भय नहीं है, उसे आयुध की आवश्यकता नहीं होती।

छुहतण्हवाहिवेयणचिंताभयसोयपीडियसरीरा ।
संसारे हिंडंता ते सव्वण्हू कहं होंति ॥117॥

क्षुधातृष्णाव्याधिवेदनाचिन्ताभयशोकपीडितशरीराः ।
संसारे हिण्डमानाः ते सर्वज्ञा कथं भवन्ति ॥117॥

जो भूख, प्यास, व्याधि, वेदना, चिन्ता, भय तथा शोक से पीड़ित शरीर वाले होकर संसार में भटक रहे हैं, वे सर्वज्ञ कैसे हो सकते हैं ?
[यह संकेत, श्वेताम्बर परम्परा अर्हन्त (सर्वज्ञ) में जो ग्यारह परिषह मानती है, उसके सम्बन्ध में भी हो सकता है।]

छुह तण्हा भय दोसो राओ मोहो य चिंतणं वाही ।
जर मरण जम्म णिद्दा खेदो सेदो विसादो य ॥118॥
रइ जिंभओ य दप्पो एए दोसा तिलोयसत्ताणं ।
सव्वेसिं सामण्णा संसारे परिभमंताणं ॥119॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षुधा तृष्णा भयं दोषो रागो मोहश्च चिन्ता व्याधिः।
जरा मरणं जन्म निद्रा खेदः स्वेदो विषादश्च ॥118॥
रतिर्जृम्भा च दर्प एते दोषाः त्रिलोकसत्त्वानाम्।
सर्वेषां सामान्याः संसारे परिभ्रमताम् ॥119॥

भूख, प्यास, भय, दोष, राग, मोह, चिन्ता, व्याधि, जरा (वृद्धावस्था), मृत्यु, जन्म, निद्रा, खेद, स्वेद (पसीना), विषाद, रति, जम्भाई तथा दर्प (घमण्ड)– ये दोष तो संसार में परिभ्रमण करने वाले तीनों लोकों के समस्त जीवों में समानरूप से पाये जाते हैं।

एए सव्वे दोसा जस्स ण विज्जंति छुहतिसाईया।
सो होइ परमदेओ णिस्संदेहेण घेतव्वो ॥120॥

एते सर्वे दोषा यस्य न विद्यन्ते क्षुधातृषादिकाः।
स भवति परमदेवो निःसन्देहेन गृहीतव्यः ॥120॥

अतः जिसमें भूख, प्यास आदि ये सभी दोष (विकार) न पाये जाते हों, उसी को निःसन्देह परमदेव समझना चाहिए।

सिंहासणछत्तत्तयदिव्वोधुणिपुप्फविट्ठिचमराइं।
भामंडलदुंदुहिओ वरतरु परमेट्ठिचिण्हूत्थं ॥121॥

सिंहासनच्छत्रत्रयदिव्यध्वनिपुष्पवृष्टिचामराणि।
भामण्डलदुन्दुभी वरतरुः परमेष्ठिचिह्नोत्थानि ॥121॥

सिंहासन, तीन छत्र, दिव्य ध्वनि, पुष्पवृष्टि, चँवर, आभामण्डल, दुन्दुभि तरुवर (अशोक वृक्ष) – ये सभी परमेष्ठी के प्रकटित चिह्न हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपुण्णचंदवयणो जडमंउडविवज्जिओ णिराहरणो।
पहरणजुवइविमुक्को संतियरो होइ परमप्पा॥122॥

सम्पूर्णचन्द्रवदनः जटामुकुटविवर्जितो निराभरणः।
प्रहरणयुवतिविमुक्तः शान्तिकरो भवति परमात्मा॥122॥

पूर्णचन्द्र के समान मुखवाला; जटा, मुकुट तथा आभूषणों से रहित; आयुध एवं युवतियों से मुक्त तथा शान्तिकर (शान्तिप्रद) व्यक्ति ही परमात्मा होता है।

णिब्भूषणो वि सोहइ कोहोरागप्पभओमणो णत्थि।
जह्मा वियाररहिओ णिरंबरो मणोहरो तह्मा॥123॥

निर्भूषणोऽपि शोभते क्रोधरागप्रभवः मनः नास्ति।
यस्माद्विकाररहितो निरम्बरो मनोहरस्तस्मात्॥123॥

जिसके मन में क्रोध और राग नहीं हैं, वह आभूषण-रहित होने पर भी शोभित होता है। इसी प्रकार जो विकारों से रहित है वह दिगम्बर (वस्त्ररहित) होकर भी मनोहर प्रतीत होता है। (वही परमात्मा है।)

जह्मा सो परमसुही परमसिवो वुच्चए जिणो तह्मा।
देविंदाण वि देओ तह्मा णामं महादेओ॥124॥

यस्मात् स परमसुखी परमशिव उच्यते जिनस्तस्मात्।
देवेन्द्राणामपि देवस्तस्मान्नाम्ना महादेवः॥124॥

क्योंकि वह परमात्मा परम सुखी है, इसलिए उसे 'परम शिव' कहा जाता है और क्योंकि वह देवेन्द्रों का भी अधिदेव है, इसलिए उसका नाम 'महादेव' भी है।

अव्वावाहमणंतं जह्मा सोक्खं करेइ जीवाणं।
तह्मा संकरणामो होइ जिणो णत्थि संदेहो॥125॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अव्याबाधमनन्तं यस्मात् सुखं करोति जीवानाम् ।
तस्माच्छंकरनामा भवति जिनो नास्ति सन्देहः ॥125॥

क्योंकि वह जीवों को अबाध तथा अनन्त सुख प्रदान करता है इसलिए उस जिन का नाम 'शंकर' है – इसमें कोई सन्देह नहीं है।

लोयालोयविदण्हू तह्मा णामं जिणस्स विण्हूत्ति ।
जह्मा सीयलवयणो तह्मा सो वुच्चए चंदो ॥126॥

लोकालोकवित् तस्मात् नाम जिनस्य विष्णुरिति ।
यस्माच्छीतलवचनस्तस्मात् स उच्यते चन्द्रः ॥126॥

क्योंकि वह लोक एवं अलोक को जानता है इस कारण से उसका नाम 'विष्णु' है और क्योंकि उसके वचन शीतलता प्रदान करते हैं इसलिए उसे 'चन्द्र' कहा जाता है।

अण्णाणाण विणासो विमलाण भवइ बोहयरो ।
कम्मासुरणिद्दहणो तेण जिणो वुच्चए सूरो ॥127॥

अज्ञानानां विनाशकः विमलानां भवति बोधकरः ।
कर्मासुरनिर्दहनः तेन जिन उच्यते सूर्यः ॥127॥

वह जिन अज्ञान का विनाशक है, निर्मल हृदयवालों को बोधप्रदान करता है तथा कर्मरूपी असुरों का विनाशक है इसलिए उसे 'सूर्य' कहा जाता है।

अण्णाणमोहिएहिं य पंचेंदियलोलुएहिं पुरिसेहिं ।
जिणणामाइं परेसिं कयाइं गुणवज्जयाणं पि ॥128॥

अज्ञानमोहितैश्च पञ्चेन्द्रियलोलुपैः पुरुषैः ।
जिननामानि परेषां कृतानि गुणवर्जितानामपि ॥128॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञान से मोहित चित्त वाले तथा पाँच इन्द्रियों (के विषयों) के लोलुप पुरुष गुणहीन अन्य व्यक्तियों को जिन के नामों से पुकारते हैं।

जइ ईसरणाम णरो भिक्खं भमिऊण भुंजए को वि।
ईसरस्स गुणविहूणो किं सच्चं ईसरो होइ ॥129॥

यदि ईश्वरनामा नरः भिक्षां भ्रमित्वा भुङ्क्ते कोऽपि।
ईश्वरस्य गुणविहीनः किं सत्यम् ईश्वरो भवति ॥129॥

यदि 'ईश्वर' नाम वाला कोई मनुष्य भिक्षा के लिए भ्रमण करके भोजन करता है तो क्या ऐश्वर्य अर्थात् ईश्वर के गुणों से रहित वह व्यक्ति वास्तव में ईश्वर हो सकता है?

सव्वण्हूणाम हरी तह लोए हरिहराइया सव्वे।
सव्वण्हुगुणविरहिया किं सव्वे होंति सव्वण्हू॥130॥

सर्वज्ञनामा हरिः तथा लोके हरिहरादिकाः सर्वे।
सर्वज्ञगुणविरहिताः किं सर्वे भवन्ति सर्वज्ञाः ॥130॥

यदि हरि नाम ही 'सर्वज्ञ' है अर्थात् सर्वज्ञ का वाचक है तब तो लोक में हरि (विष्णु), हर (शंकर) आदि नामों वाले सभी व्यक्ति, जो कि सर्वज्ञ के गुणों से रहित हैं, सर्वज्ञ हो जायेंगे।

जइ इच्छइ परमपयं अव्वावाहं अणोवमं सोक्खं।
तिहुवणवंदियचलणं णमह जिणंदं पयत्तेण ॥131॥

यदि इच्छत परमपदं अव्याबाधं अनुपमं सौख्यम्।
त्रिभुवनवन्दितचरणं नमत जिनेन्द्रं प्रयत्नेन ॥131॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि तुम परमपद तथा निर्बाध अनुपम सुख चाहते हो तो तीनों लोकों के द्वारा वन्दित चरणों वाले भगवान् जिनेन्द्र को प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करो।

जम्हा अरिहंत हवइ णिराउहो णिब्भओ हवे तम्हा।
जह्मा हु अणंतसुहो इच्छीविरहिओ हवे तम्हा ॥132॥

यस्मात् अर्हन् भवति निरायुधः निर्भयो भवेत् तस्मात्।
यस्माद्धि अनन्तसुखं स्त्रीविरहितो भवेत् तस्मात्॥32॥

क्योंकि अर्हन्त परमात्मा निर्भय हैं अतः वे निरायुध हैं। इसी प्रकार क्योंकि अर्हन्त परमात्मा अनन्त सुख से युक्त हैं अतः वे स्त्री से भी रहित हैं अर्थात् उन्हें स्त्री की अपेक्षा नहीं है।

जम्हा छुहतण्हाओ तस्स ण पीडंति परमघोराओ।
तम्हा असणं पाणं तिलोयणाहो ण सेवेइ ॥133॥

यस्मात् क्षुत्तृष्णे तं न पीडयतः परमघोरे।
तस्मादशनं पानं त्रिलोकनाथो न सेवते ॥133॥

क्योंकि अर्हन्त परमात्मा को अति दारुण भूख-प्यास भी पीडित नहीं करती इसलिए वे तीनों लोकों के स्वामी (भगवान् अर्हन्त) भोज्य एवं पेय पदार्थों का सेवन भी नहीं करते।

पूजारिहो दु जह्मा धरणिंदणरिंदसुरवरिंदाणं।
अरिरयरहस्समहणो अरहंतो वुच्चए तह्मा ॥134॥

पूजार्हस्तु यस्मात् धरणेन्द्रनरेन्द्रसुरवरेन्द्राणाम्।
अरिरजरहस्यमथनः अर्हन् उच्यते तस्मात् ॥134॥

क्योंकि जिनेन्द्र भगवान् धरणेन्द्र, नरेन्द्र तथा देवेन्द्र के लिये भी पूजनीय हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और क्योंकि उन्होंने कर्म (रज) रूपी शत्रुओं का विनाश कर दिया है अतः वे 'अर्हन्त' कहे जाते हैं।

जियकोहो जियमाणो जियमायालोहमोह जियमयओ।
जियमच्छरो य जह्मा तम्हा णामं जिणो उत्तो ॥135॥

जितक्रोधो जितमानो जितमायालोभमोहः जितमदः।
जितमत्सरश्च यस्मात्तस्मान्नाम जिन उक्तः ॥135॥

क्योंकि उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, मद तथा मत्सर को जीत लिया है, इसलिए उनका नाम 'जिन' कहा गया है।

जम्मजरमरणतिदयं जम्हा दड्ढं जिणेण णिस्सेसं।
तम्हा तिउरविणासो होइ जिणे णत्थि संदेहो ॥136॥

जन्मजरामरणत्रितयं यस्माद्दग्धं जिनेन निःशेषम्।
तस्मात्त्रिपुरविनाशे भवति जिने नास्ति सन्देहः ॥136॥

क्योंकि जिनेन्द्र भगवान् ने जन्म, जरा तथा मरण—इन तीनों को पूरी तरह दग्ध (नष्ट) कर दिया है, इसलिए उनके 'त्रिपुरविनाशक' होने में कोई सन्देह नहीं है।

अरहंतपरमदेवं जो वंदइ परमभत्तिसंजुत्तो।
तेलोयवंदणीओ अइरेण य सो णरो होइ ॥137॥

अर्हत्परमदेवं यो वन्दते परमभक्तिसंयुक्तः।
त्रिलोकवन्दनीयोऽचिरेण च स नरो भवति ॥137॥

जो मनुष्य परम भक्तिभाव से युक्त होकर उन परम देव अर्हन्त परमात्मा की वन्दना करता है, वह शीघ्र ही तीनों लोकों के लिये वन्दनीय हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो जिणवरिंदपूअं कुणइ सयत्तीइ सो महापुरिसो।
तेलोयपूअणीओ अइरेण य सो णरो होइ ॥138॥

यो जिनवरेन्द्रपूजां करोति स्वशक्त्या स महापुरुषः।
त्रिलोकपूजितोऽचिरेण च स नरो भवति ॥138॥

जो मनुष्य अपनी शक्ति के अनुरूप भगवान् जिनेन्द्र की पूजा करता है, उस महापुरुष की शीघ्र ही तीनों लोकों के द्वारा पूजा की जाती है।

सव्वण्हूपरिक्खा सम्मत्ता।
सवज्ञपरीक्षा समाप्ता ।

सर्वज्ञ-परीक्षा का वर्णन समाप्त हुआ।

———o———

धम्मो जिणेण भणिओ सायारो तह हवे अणायारो।
एएसिं दोण्हं पि हु सारं खलु होइ सम्मत्तं ॥139॥

धर्मो जिनैः भणितः सागारस्तथा भवेदनगारः।
एतयोर्द्वयोरपि हि सारं खलु भवति सम्यक्त्वम्॥139॥

जिनों के द्वारा धर्म दो प्रकार का बताया गया है – सागार (गृहस्थ) तथा अनगार (संन्यास)। इन दोनों का सार ही वस्तुतः 'सम्यक्त्व' है।

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हिययम्मि पवट्टए जस्स।
कम्मं वालुयरम्मि तस्स[1] बंधो चिय ण एइ ॥140॥

सम्यक्त्वसलिलप्रवाहो नित्यं हृदये प्रवर्तते यस्य।
कर्मवालुकावरणं तस्य बन्धमेव नेति ॥140॥

1. 'बन्धुचिय णासए तस्स' इति दर्शनप्राभृते पाठान्तरम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह जिसके हृदय में सर्वदा प्रवाहित होता है, कर्मरूपी बालू का आवरण उसे बन्धन में नहीं डाल सकता।

सम्मत्तरयणलब्भे णरयतिरिक्खेसु णत्थि उववाओ।
जइ ण मुअइ सम्मत्तं अहव ण बंधाउसो पुव्वं ॥141॥

सम्यक्त्वरत्नलब्धे नरकतिर्यक्षु नास्ति उपपादः।
यदि न मुञ्चति सम्यक्त्वं अथवा न बन्ध आयुषः पूर्वम्॥141॥

सम्यक्त्वरूपी रत्न की प्राप्ति हो जाने पर जीव को नरक एवं तिर्यक् गतियों में नहीं जाना पड़ता, शर्त यह है कि उसने सम्यक्त्व को न छोड़ा हो अथवा उसे पूर्व में उन गतियों का बन्ध न हुआ हो।

पंचयअणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तिण्णेव।
चत्तारि य सिक्खावययाइं सायारो एरिसो धम्मो॥142॥

पञ्चाणुव्रतानि गुणव्रतानि भवन्ति त्रीण्येव।
चत्वारि च शिक्षाव्रतानि सागार एतादृशो धर्मः॥142॥

जिसमें पाँच अणुव्रत हैं, तीन गुण व्रत हैं तथा चार शिक्षा व्रत हैं – इस प्रकार का धर्म ही सागार धर्म है।

देवयपियरणिमित्तं मंतोसहजंतभयणिमित्तेण।
जीवा ण मारियव्वा पढमं तु अणुव्वयं होइ॥143॥

देवतापितृनिमित्तं मन्त्रौषधयन्त्रभयनिमित्तेन।
जीवा न मारयितव्याः प्रथमं तु अणुव्रतं भवति॥143॥

देव तथा पितरों के निमित्त से तथा मन्त्र, यन्त्र, औषधि अथवा भय के कारण जीवों को नहीं मारना चाहिए – यह (अहिंसा नामक) प्रथम अणुव्रत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वागादीहि असच्चं परपीडयरं तु सच्चवयणं पि ।
वज्जंतस्स णरस्स हु विदियं तु अणुव्वयं होइ ॥144॥

वागादिभिरसत्यं परपीडाकरं तु सत्यवचनमपि ।
वर्जतो नरस्य हि द्वितीयं तु अणुव्रतं भवति ॥144॥

असत्य वचन तथा परपीडाकारक सत्यवचन का वाणी से त्याग करना- मनुष्य का द्वितीय (सत्य नामक) अणुव्रत है।

गामे णयरे रण्णे वट्टे पडियं च अहव विस्सरियं ।
णादाणं परदव्वं तिदियं तु अणुव्वयं होइ ॥145॥

ग्रामे नगरे अरण्ये वर्त्मनि पतितं चाथवा विस्मृतम् ।
नादानं परद्रव्यं तृतीयं तु अणुव्रतं भवति ॥145॥

ग्राम, नगर, वन तथा मार्ग में पड़े हुए अथवा किसी के द्वारा भुला दिये गये (विस्मृत) परद्रव्य का ग्रहण नहीं करना – यह (अस्तेय नामक) तृतीय अणुव्रत है।

मायावहिणिसमाओ दट्ठव्वाओ परस्स महिलाओ ।
सयदारे संतोसो अण्णुव्वयं तं चउत्थं तु ॥146॥

मातृभगिनिसमाना द्रष्टव्याः परस्य महिलाः ।
स्वदारे सन्तोषोऽणुव्रतं तच्चतुर्थं तु ॥146॥

परायी स्त्रियों को माता और बहिन के समान समझना चाहिए तथा अपनी पत्नी से ही सन्तोष करना चाहिए – यह (ब्रह्मचर्य नामक) चतुर्थ अणुव्रत है।

धणधण्णदुपयचउप्पयखेत्तण्णछादियाण दव्वाणं ।
जं किज्जइ परिमाणं पंचमयं अणुव्वयं होइ ॥147॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनधान्यद्विपदचतुष्पदक्षेत्रान्याच्छादनानां द्रव्याणाम्।
यत्क्रियते परिमाणं पञ्चमकम् अणुव्रतं भवति ॥147॥

धनधान्य, द्विपद अर्थात् दो पैरों वाले दास-दासी आदि, चतुष्पद अर्थात् चार पैरों वाले पालतू पशु, खेत (खुली भूमि) तथा भवन आदि आच्छादित भूमि का परिमाण या परिसीमन करना- पञ्चम (अपरिग्रह नामक) अणुव्रत है।

जं तु दिसावेरमणं गमणस्स दु जं च परिमाणं ।
तं च गुणव्वय पढमं भणियं जियरायदोसेहिं ॥148॥

यत्तु दिग्विरमणं गमनस्य तु यच्च परिमाणम् ।
तच्च गुणव्रतं प्रथमं भणितं जितरागदोषैः ॥148॥

राग-द्वेष को जीत लेने वाले वीतराग परमात्मा के द्वारा विभिन्न दिशाओं में गमन का जो परिमाण या परिसीमन किया गया है, वह 'दिग्विरमण' नामक प्रथम गुणव्रत बतलाया गया है।

मज्जारसाणरज्जुवंड लोहो य अग्गिविससत्थं ।
सपरस्स घादहेदुं अण्णेसिं णेव दादव्वं ॥149॥
वहबंधपासछेदो तह गुरुभाराधिरोहणं चेव ।
ण वि कुणइ जो परेसिं विदियं तु गुणव्वयं होइ ॥150॥

मार्जारश्वरज्जुवण्टः लोहश्च अग्निविषशस्त्राणि ।
स्वपरस्यघातहेतूनि अन्येषां नैव दातव्यानि ॥149॥
वधबन्धपाशच्छेदानि तथा गुरुभाराधिरोहणं चैव ।
नापि करोति यः परेषां द्वितीयं गुणव्रतं भवति ॥150॥

जो अपने तथा दूसरे के वध के कारण हैं ऐसे बिल्ली, कुत्ता, रस्सी, दराँती, अग्नि, विष तथा लोहे आदि के शस्त्रास्त्र दूसरों को नहीं देने चाहिए। इसी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरों का वध, बन्धन, पाश (उन्हें जाल आदि में फँसाना) तथा छेदन (अंगभंग) नहीं करना चाहिए और उन पर बहुत अधिक भार नहीं लादना चाहिए – यह द्वितीय 'अनर्थदण्डविरमण' नामक गुणव्रत है।

वच्छच्छभूषणाणं तंबोलाहरणगंधपुप्फाणं ।
जं किज्जइ परिमाणं तिदियं तु गुणव्वयं होइ ॥151॥
वस्त्रास्त्रभूषणानां ताम्बूलाभरणगन्धपुष्पाणाम् ।
यत्क्रियते परिमाणं तृतीयं तु गुणव्रतं भवति ॥151॥

वस्त्र, अस्त्र, भूषण, पान, आभरण, गन्ध, पुष्प आदि का परिसीमन करना– तृतीय 'भोगोपभोगपरिमाण' नामक गुणव्रत है।

पंचणमोक्कारपयं मंगलं लोगुत्तमं तहा सरणं ।
णिच्चं झाएयव्वं उभए सज्झाहिं हिययम्मि ॥152॥
रुद्दट्टविवज्जणं पि समदा सव्वेसु चेव भूदेसु ।
संजमसुहभावणा वि सिक्खा सा वुच्चए पढमा ॥153॥

पञ्चनमस्कारपदं मङ्गलं लोकोत्तमं तथा शरणम् ।
नित्यं ध्यातव्यं उभयोः सन्ध्ययोः हृदये ॥152॥
रुद्रार्त्तविवर्जनमपि समता सर्वेषु चैव भूतेषु ।
संयमशुभभावना अपि शिक्षा सा उच्यते प्रथमा ॥153॥

पाँच नमस्कार पद, लोक में चार मंगल, चार उत्तम तथा चार शरण–इनका नित्य दोनों सन्ध्याओं में हृदय में ध्यान करना चाहिए; रौद्र एवं आर्त ध्यानों का त्याग करना चाहिए ; समस्त प्राणियों के प्रति समत्व दृष्टि रखनी चाहिए तथा संयम का पालन करते हुए शुभ भावना रखनी चाहिये – यह प्रथम 'सामायिक' शिक्षाव्रत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उववासो कायव्वो मासे मासे चउस्सु पव्वेसु ।
हवदि य विदिया सिक्खा सा कहिया जिणवरिंदेहिं ॥154॥

उपवासः कर्तव्यो मासे मासे चतुर्षु पर्वसु ।
भवति च द्वितीया शिक्षा सा कथिता जिनेन्द्रैः ॥154॥

प्रत्येक मास में तथा चारों पर्वों अर्थात् दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी को उपवास करना चाहिए – जिनेन्द्रों द्वारा यह द्वितीय 'प्रोषधोपवास' नामक शिक्षाव्रत प्रतिपादित किया गया है।

असणाइचउवियप्पो आहारो संजयाण दादव्वो ।
परमाए भत्तीए तिदिया सा वुच्चए सिक्खा ॥155॥

अशनादिचतुर्विकल्प आहारः संयतानां दातव्यः ।
परमया भक्त्या तृतीया सा उच्यते शिक्षा ॥155॥

अशन इत्यादि चार प्रकार का (भोज्य, पेय, चर्व्य एवं लेह्य) आहार परम भक्ति से संयत मुनियों को देना चाहिए – यह तृतीय 'अतिथिसंविभाग' नामक शिक्षाव्रत बतलाया गया है।

चइऊण सव्वसंगे गहिऊण तह महव्वए पंच ।
चरिमंते सण्णासं जं घिप्पइ सा चउत्थिया सिक्खा ॥156॥

त्यक्त्वा सर्वसङ्गान् गृहीत्वा तथा महाव्रतानि पञ्च ।
चरमान्ते संन्यासं यत् गृह्णाति सा चतुर्थी शिक्षा ॥156॥

समस्त प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके तथा पाँच महाव्रत धारण करके, अन्त में संन्यास अर्थात् समाधिमरण ग्रहण करना ही चतुर्थ शिक्षाव्रत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एयाइं वयाइं णरो जो पालइ जइ सुद्धसम्मत्तो ।
उप्पज्जिऊण सग्गे सो भुंजइ इच्छियं सोक्खं ॥157॥

एतानि व्रतानि नरो यः पालयति यदि शुद्धसम्यक्त्वः ।
उत्पद्य स्वर्गे सः भुङ्क्ते इच्छितं सौख्यम् ॥157॥

शुद्ध सम्यक्त्व से युक्त जो मनुष्य इन (पूर्वोक्त) व्रतों का पालन करता है, वह स्वर्ग में उत्पन्न होकर अभीष्ट सुखों को भोगता है।

दिव्वाणि विमाणाणि य सुरलोए होंति पंचवण्णाइं ।
दित्तीए आयव्वं जिणंति चंदस्स कंतीए ॥158॥
दिव्यानि विमानानि च सुरलोके भवन्ति पञ्चवर्णानि ।
दीप्त्या आतपं जीयन्ते चन्द्रस्य कान्त्या ॥158॥

देवलोक में पाँच रंगों वाले दिव्य विमान होते हैं जो अपनी आभा से चन्द्रमा की कान्ति को भी जीत लेते हैं।

सोहंति ताइं णिच्चं पलंबवरहेमदामघंटाहिं ।
बहुविहकूडेहिं तहा णाणाविहधयवएहिं ॥159॥

शोभन्ते तानि नित्यं प्रलम्बवरहेमदामघण्टाभिः ॥
बहुविधकूटैः तथा नानाविधध्वजपताकाभिः ॥159॥

वे विमान सदा लटकती हुई श्रेष्ठ स्वर्णमालाओं की घण्टियों से, अनेक प्रकार के शिखरों से तथा तरह-तरह की ध्वज-पताकाओं से सुशोभित होते हैं।

तेसिं होंति समीवे बहुभेयजलासया परमरम्मा ।
सोहंति सव्वकालं फलपुप्फपवालपत्तेहिं ॥160॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेषां भवन्ति समीपे बहुभेदजलाशयाः परमरम्याः ।
शोभन्ते सर्वकालं फलपुष्पप्रवालपत्रैः ॥160॥

उनके समीप अनेक प्रकार के रमणीय जलाशय होते हैं जो फलों, फूलों, किसलयों तथा पत्तों से सर्वदा सुशोभित रहते हैं।

दट्ठूण य उप्पतिं केई विज्जंति सेयचमरेहिं ।
केई जयजयसद्दे कुव्वंति सुरा सउच्छाहा ॥161॥

दृष्ट्वा चोत्पत्तिं केचित् वीजयन्ति श्वेतचमरैः ।
केचित्जयजयशब्दान्कुर्वन्ति सुराः सोत्साहाः ॥161॥

किसी की स्वर्ग में उत्पत्ति को देखकर कुछ देवता श्वेत चमरों से उसकी हवा करते हैं तथा कुछ देवता उत्साहपूर्वक उसकी जय-जयकार करते हैं ।

वरमुरववुंदुहिरओ भेरीओ संखवेणुवीणाओ ।
पटुपडहझल्लरियो वायंति सुरा सलीलाए ॥162॥

वरमुरजदुन्दुभिरवानि भेर्यः शंखवेणुवीणाः ।
पटुपटहझल्लर्यः वादयन्ति सुराः सलीलया ॥162॥

स्वर्ग में देवता लीलापूर्वक श्रेष्ठ मुरज (मृदंग), दुन्दुभी, घण्टा, भेरी, शंख, वेणु, वीणा, प्रखर नगाड़े तथा झल्लरी बजाते हैं।

गायंति अच्छराओ काओ वि मणोहराओ गीयाओ ।
काओ वि वरंगीओ णच्चंति विलासवेसाओ ॥163॥

गायन्ति अप्सरसः का अपि मनोहराणि गीतानि ।
का अपि वराङ्गना नृत्यन्ति विलासवेषाः ॥163॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ कोई अप्सराएँ मनोहर गीत गाती हैं तो कोई सुन्दर अंगों वाली (अप्सराएँ) विलासी वेष धारण करके नृत्य करती हैं ।

को मज्झ इमो जम्मो रमणीओ आसमो इमो को वा।
कस्स इमो परिवारो एवं चिंतेइ सो देओ ॥164॥

किं मम इदं जन्म रमणीयं आसीदयं को वा ।
कस्यायं परिवार एवं चिन्तयति स देवः ॥164॥

'क्या मेरा यह जन्म रमणीय है ? अथवा ये कौन हैं ? यह किसका परिवार है ? इस प्रकार वह देव सोचता है।

णाऊण देवलोयं पुणरवि उप्पत्तिकारणं देओ।
सव्वंगजायभासो वियसियवयणो य चिंतेइ ॥165॥
किं दत्तं वरदाणं को व मए सोहणो तवो चिण्णो।
जेण अहं सुरलोए उववण्णो सुद्धरसणीए ॥166॥

ज्ञात्वा देवलोकं पुनरपि उत्पत्तिकारणं देवः ।
सर्वाङ्गजातभासः विकसितवदनश्च चिन्तयति॥165॥
किं दत्तं वरदानं किं वा मया शोभनं तपः चित्तम् ।
येनाहं सुरलोके उपपन्नः शुद्धरसायाम् ॥166॥

तब देवलोक में अपनी उत्पत्ति को जानकर सर्वांगपूर्ण आभायुक्त तथा विकसित अर्थात् प्रसन्न मुख वाला वह देव देवलोक में अपनी उत्पत्ति के कारण का विचार करता है – 'क्या मैंने कोई श्रेष्ठ दान दिया अथवा क्या मैंने कोई श्रेष्ठ तप किया था जिसके कारण मैं देवलोक की पावन भूमि पर उत्पन्न हुआ हूँ।'

णाऊण णिरवसेसं पुव्वभवे जिणपुज्जआ रइया।
तो कुणइ णमोकारं भत्तीए जिणवरिंदाणं ॥167॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञात्वा निरवशेषं पूर्वभवे च जिनपूजा रचिता ।
ततः करोति नमस्कारं भक्त्या जिनवरेन्द्राणाम् ॥167॥

पूर्णरूप से अपने पूर्वभव को तथा उसमें की गई भगवान् जिनेन्द्र की पूजा को जानकर वह देव उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करता है।

पुणरवि पणमियमत्थो भणइ सुरो अंजलिं सिरे किच्चा ।
धम्मायरियस्स णमो जेणाहं गाहिओ धम्मो ॥168॥

पुनरपि प्रणतमस्तकः भणति सुरः अञ्जलिं सिरसि कृत्वा।
धर्माचार्याय नमः येनाहं ग्राहितः धर्मः ॥168॥

वह देव पुनः नतमस्तक होकर तथा सिर पर अञ्जलि बाँधकर अर्थात् हाथ जोड़कर कहता है – 'मेरे धर्माचार्य को नमस्कार है जिनके समीप मैंने धर्म को ग्रहण किया था।'

सो मज्झ वंदणीओ अहिगमणीओ य पूअणीओ य ।
जस्स पसाहेणाहं उप्पण्णो देवलोयम्मि ॥169॥

स मम वन्दनीयः अभिगमनीयश्च पूजनीयश्च।
यस्य प्रसादेनाहं उत्पन्नो देवलोके ।।169॥

'वे (धर्माचार्य) मेरे वन्दनीय, उपास्य (उपासना करने योग्य) तथा पूजनीय हैं, जिनकी कृपा से मैं देव लोक में उत्पन्न हुआ हूँ।'

अहिसेहगिहं देवा णाऊण करंति तस्स अहिसेहं ।
पुणरवि अरुहं गेहं आणंति मणोहरं रम्मं ॥170॥

अभिषेकगृहं देवा नीत्वा कुर्वन्ति तस्याभिषेकम् ।
पुनरपि अर्हद्गृहं आनयन्ति मनोहरं रम्यम् ॥170॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस देव को अभिषेकगृह (स्नानगृह) ले जाकर देवता उसका अभिषेक करते हैं और फिर मनोहर तथा रमणीय अर्हत्-गृह में लाते हैं।

बहुभूसणेहि देहं भूसंता तस्स दि (व्व) मंतेहिं।
अहिसिंचिऊण पुणरवि देवा बंधंति वरपट्टं ॥171॥

बहुभूषणैः देहं भूषयन् तस्य दिव्यमन्त्रैः।
अभिषिच्य पुनरपि देवा बध्नन्ति वरपट्टम् ॥171॥

फिर अनेक आभूषणों से उसके शरीर को सजाकर तथा दिव्य मन्त्रों से उसका अभिषेक करके देवता उसे श्रेष्ठ मुकुट (वरपट्ट) पहनाते हैं।

सिंहासणट्ठियस्स हु सुहगेहेसु सुट्ठु रमणीए।
उवगम केइ देवा जोगाइं कहंति कम्माइं ॥172॥
पढमं जिणंदपूयं अविचलवरलोयणं पुणो पेच्छा।
वरणाडयस्स पिच्छा तह माणिय दिव्व बहुआउ ॥173॥

सिंहासनस्थितस्य हि शुभगृहेषु सुष्ठु रमणीयेषु।
उपगम्य केचिद्देवा योग्यानि कथयन्ति कर्माणि ॥172॥
प्रथमं जिनेन्द्रपूजा अविचलवरलोचनं पुनः प्रेक्षा।
वरनाटकस्य प्रेक्षा ततःमन्यस्व दिव्यबहुआयुः ॥173॥

जब वह देव अतीव रमणीय एवं शुभ भवनों में सिंहासनारूढ़ हो जाता है तब कुछ देवता समीप जाकर उसे करणीय कार्य बतलाते हैं कि सर्वप्रथम जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करें, फिर अपलकदृष्टि से जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करें और फिर दिव्य नाटक आदि देखते हुए आप दिव्य एवं दीर्घ जीवन व्यतीत करें।

पडिबोहिओ हु संतो अण्णेहिं सुरेहिं सुरवरो एवं।
तो कुणइ महापूअं भत्तीए जिणवरिंदाणं ॥174॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिबोधितो हि सन् अन्यैः सुरैः सुरवर एवम् ।
ततः करोति महापूजां भक्त्या जिनवरेन्द्राणाम् ॥174॥

अन्य देवों के द्वारा इस प्रकार प्रतिबोधित किये जाने पर वह सुरश्रेष्ठ, श्रेष्ठ जिनेन्द्रों की भक्तिभाव से महापूजा करता है।

कुणइ पुणो वि य तुट्ठो अडवेलालोयणं च सो देओ ।
वरणाडयं स पच्छा कुणइ पुणो पुव्वकयउत्ति ॥175॥

करोति पुनरपि च तुष्टः अष्टवेलालोचनं च स देवः ।
वरनाटकं च प्रेक्ष्य करोति पुनः पूर्वकर्म इति ॥175॥

वह देव संतुष्ट होकर जिनेन्द्र भगवान् का अष्टवेला (आठ पहर) तक दर्शन करता है और दिव्य नाटक को देखकर फिर पूर्वोक्त कर्मों को करता है।

दिव्वच्छराहिं य समं उत्तंगपउहाराहिं चिरकालं ।
अणुहवइ कामभोए अट्ठगुणरिद्धिसंपण्णो ॥176॥

दिव्याप्सरोभिश्च समं उत्तुंगपटुहाराभिः चिरकालं ।
अनुभवति कामभोगान् अष्टगुणर्द्धिसम्पन्नः ॥176॥

आठ गुणों वाली ऋद्धि (विभूति या शक्ति) से सम्पन्न वह देव अति उत्तम तथा सुन्दर (चमचमाते हुए) हार धारण करने वाली दिव्य अप्सराओं के साथ चिरकाल तक कामभोगों का अनुभव करता है।

अणिमं महिमं लहिमं पत्ती पायम्म कामरूवित्तं ।
ईसत्तं च वसित्तं अट्ठगुणा होंति णायव्वा ॥177॥

अणिमा महिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं कामरूपित्वम् ।
ईशित्वं च वशित्वं अष्टगुणा भवन्ति ज्ञातव्याः ॥177॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवों के जानने योग्य आठ गुण हैं – अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, कामरूपित्व, ईशित्व तथा वशित्व।

इय अट्ठगुणो देओ जरावाहिविवज्जिओ चिरंकालं।
जिणधम्मस्स फलेण य दिव्वसुहं भुंजए जीओ ॥178॥

इति अष्टगुणो देवो जराव्याधिविवर्जितश्चिरं कालम्।
जिनधर्मस्य फलेन च दिव्यसुखं भुङ्क्ते जीवः ॥

इस प्रकार जीव आठ गुणों से युक्त देव बनकर, दीर्घकाल तक जरा-व्याधि से रहित होकर, जिनधर्म के फल के रूप में दिव्य सुखों को भोगता है।

इति देवसुगइ सम्मत्ता।
इति देवसुगतिः समाप्ता।

इस प्रकार से देवों की सुगति का वर्णन समाप्त हुआ।

———o———

भुंजित्ता चिरकालं दिव्वं हियइच्छिअं सुहं सग्गे।
माणुसलोयम्मि पुणो उप्पज्जए उत्तमे वंसे ॥179॥

भुक्त्वा चिरकालं दिव्यं हृदयेप्सितं सुखं स्वर्गे।
मानुषलोके पुनः उत्पद्यते उत्तमे वंशे ॥179॥

स्वर्ग में चिरकाल तक मनोवाञ्छित दिव्य सुख का भोग करके जीव पुनः मनुष्यलोक में उत्तम कुल में जन्म लेता है।

भुंजित्ता मणुलोए सव्वे हियइच्छियं अविग्घेण।
होऊण भोयविरओ जिणदिक्खं गिण्हए परमं ॥180॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुक्त्वा मनुजलोके सर्वान् हृदयेप्सितान् अविघ्नेन।
भूत्वा भोगविरतो जिनदीक्षां गृह्णाति परमाम्॥180॥

मनुष्यलोक में निर्विघ्नरूप से समस्त मनोवाञ्छित सुखों को भोगकर, तत्पश्चात् भोगों से विरत होकर वह जीव (आत्मा) परम जिनदीक्षा को ग्रहण करता है।

डहिऊण य कम्मवणं उग्गेण तवाणलेण णिस्सेसं।
आपुण्णभवं अणंतं सिद्धिसुहं पावए जीओ॥181॥

दग्ध्वा च कर्मवनं उग्रेण तपोऽनलेन निःशेषम्।
आपूर्णभवमनन्तं सिद्धिसुखं प्राप्नोति जीवः॥181॥

वह अपनी उग्र तपरूपी अग्नि से कर्मरूपी वन को पूर्णरूपेण दग्ध करके, आयुष्य के पूर्ण होने पर अनन्त सिद्धिसुख को प्राप्त करता है।

सुमणुसहिए वल्लहमणाइसिद्धं तओ समासेण।
अणयारपरमधम्मं वोच्छामि समासओ पत्तो॥182॥

सुमनुष्यहितं वल्लभम् अनादिसिद्धं ततः समासेन।
अनगारपरमधर्मं वक्ष्ये समासतः प्राप्तम्॥182॥

अब मैं संक्षेप में परम अनगार (संन्यास) धर्म को साररूप से कहता हूँ जो श्रेष्ठ मानव जीवन के लिए हितकर, प्रिय तथा अनादिसिद्ध है।

अट्ठदस पंच पंच य मूलगुणा सव्वतो सदाणयाराणं।
उत्तरगुणा अणेया अणयारो एरिसो धम्मो॥183॥

अष्टादश पञ्च पञ्च च मूलगुणाः सर्वतः सदानगाराणां।
उत्तरगुणा अनेके अनगार एतादृशो धर्मः॥183॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनगारों के लिए सर्वदा सब प्रकार से आचरणीय अट्ठाईस (18+5+5) मूलगुण तथा अनेक उत्तरगुण बतलाये गये हैं। इस प्रकार का धर्म ही अनगार धर्म है।

जे सुद्धवीरपुरिसा जाइजरामरणदुक्खणिव्विण्णा।
पालंति सुसुद्धभावा ते मूलगुणा य परिसेसा ॥184॥

ये शुद्धवीरपुरुषा जातिजरामरणदुःखनिर्विण्णाः।
पालयन्ति सुशुद्धभावान्तेमूलगुणान्च परिशेषान्॥184॥

जो जन्म, जरा तथा मरण के दुःखों से खिन्न शुद्धात्मा वीर पुरुष हैं, वे अत्यन्त शुद्ध भावों से सम्पूर्ण मूलगुणों का पालन करते हैं।

इच्चेयावि सव्वे पालंति सविरियं अगूहंता।
उवलुद्धयावधीरा संसारदुक्खक्खयेट्ठाए ॥185॥

इत्यादिकानपि सर्वान् पालयन्ति स्ववीर्यम् अगूहमानाः।
अपलुब्धकाः धीराः संसारदुःखक्षयेच्छया ॥185॥

लोभी पुरुषों से दूर रहने वाले ऐसे धीर पुरुष, अपने वीर्य (शक्ति) को न छिपाते हुए, संसारिक दुःख का नाश करने की इच्छा से पूर्वोक्त समस्त गुणों का पालन करते हैं।

हेमंते धिदिमंता णलिणिदलविणासियं महासीयं।
संसार दुक्खभीए वि सहंति चडंति य सीयं ॥186॥

हेमन्ते धृतिमन्तो नलिनीदलविनाशितं महाशीतम्।
संसारदुःखभयादपि सहन्ते चण्डमिति च शीतम्॥186॥

संसार के जन्म-मरणरूपी दुःखों के भय से वे (धीर एवं वीर पुरुष) हेमन्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋतु में कमलिनी के पत्तों का विनाश करने वाले महाशीतकाल में धैर्यपूर्वक उस प्रचण्ड शीत को सहन करते हैं।

जलमलमइलिअंगा पावमलविवज्जिया महामुणिणो।
आइच्चस्साहिमुहं करंति आदावणं धीरा ॥187॥

जलमलमलिनिताङ्गाः पापमलविवर्जिता महामुनयः।
आदित्यस्याभिमुखं कुर्वन्ति आतापनं धीराः ॥187॥

जल-मल से मलिन अंगों वाले किन्तु पाप के मल से रहित वे धीर महामुनि सूर्य के सम्मुख खड़े होकर ग्रीष्मकाल में आतापना लेते हैं।

धारंधसारगहिले कापुरीसभयागरे परमभीमे।
गुणिणो वसंति रण्णे तरुमूले वरिसयालम्मि ॥188॥

धारान्धकारगहने कापुरुषभयकरे परमभीमे।
मुनयो वसन्ति अरण्ये तरुमूले वर्षाकाले ॥188॥

वर्षाकाल में वे धीर मुनि घोर अन्धकार से व्याप्त तथा कायर पुरुषों में भय उत्पन्न कर देने वाले परम भीषण अरण्य में वृक्षों के नीचे निवास करते हैं।

अणयारपरमधम्मं धीरा काऊण सुद्धसम्मत्ता।
गच्छंति केई सग्गे केई सिज्झंति धुदकम्मा ॥189॥

अनगारपरमधर्मं धीराः कृत्वा शुद्धसम्यक्त्वाः।
गच्छन्ति केचित् स्वर्गे केचित् सिद्ध्यन्ति धुतकर्माणः ॥

शुद्ध सम्यक्त्व से युक्त परम अनगार धर्म का पालन करके कुछ धीर मुनि स्वर्ग में जाते हैं तो कुछ (मुनि) कर्मों का दाह (नाश) करके सिद्धि को प्राप्त करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ण वि अत्थि माणुसाणं आदसमुत्थं चिय विसयातीदं ।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं अणोवमं जं च सिद्धाणं ॥190॥

नाप्यस्ति मनुजानां आत्मसमुत्थं एव विषयातीतम् ।
अव्युच्छिन्नं च सुखं अनुपमं यच्च सिद्धानाम् ॥190॥

जो अनुपम तथा निर्बाध सुख आत्मा का समुत्थान करने वाले विषयातीत सिद्धों को प्राप्त है, वह मनुष्यों को प्राप्त नहीं है।

अट्ठविहकम्मवियड्ढ (ला) सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा ।
अट्ठगुणा किदकिच्चा लोयग्गणिवासिणो सिद्धा ॥191॥

अष्टविधकर्मविकलाः शीतीभूता निरञ्जना नित्याः ।
अष्टगुणाः कृत्तकृत्या लोकाग्रनिवासिनः सिद्धाः ॥191 ॥

लोकाग्र पर निवास करने वाले वे सिद्ध भगवान् आठ प्रकार के कर्मों से विरहित, निष्काम, निरञ्जन (निर्दोष), नित्य, (सम्यक्त्व आदि) आठ गुणों से युक्त तथा कृतकृत्य होते हैं।

सम्मत्त णाण दंसण वीरिय सुहमं तहेव अवगहणं ।
अगुरुलघुमव्वाबाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥192॥

सम्यक्त्वं ज्ञानं दर्शनं वीर्यं सूक्ष्मं तथैवावगाहनम् ।
अगुरुलघु अव्याबाधं अष्टगुणा भवन्ति सिद्धानाम् ॥192॥

सिद्धों के आठ गुण होते हैं – 1. सम्यक्त्व, 2. ज्ञान, 3. दर्शन, 4. वीर्य, 5. अमूर्तत्व (सूक्ष्म), 6. अवगाहन, 7. अगुरुलघु तथा 8. अव्याबाध।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवियाण बोहत्थणं इय धम्मरसायणं समासेण ।
वर पउमणंदिमुणिणा रइयं जमणियमजुत्तेण ॥193॥

भव्यानां बोधनार्थं इदं धर्मरसायनं समासेन ।
वरपद्मनन्दिमुनिना रचितं यमनियमयुक्तेन ॥193॥

यम-नियमों से युक्त श्रेष्ठ पद्मनन्दि मुनि ने भव्य (सांसारिक) जीवों के बोध के लिए, संक्षेप में इस धर्मरसायन ('धम्मरसायणं' नामक ग्रन्थ) का प्रणयन् किया है।

इदि सिरिधम्मरसायणं सम्मत्तं ।
इति श्रीधर्मरसायनम् समाप्तम् ।

इस प्रकार यह 'धम्मरसायणं' संज्ञक ग्रन्थ समाप्त हुआ।

———o———

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथानुक्रमणिका

गाथा	पाठक्रमाङ्क
अट्ठदस पंच पंच	183
अट्ठविहकम्मवियडा	191
अणयारपरमधम्मं	189
अणिमं महिमं लहिमं	177
अण्णाणाण विणासे	127
अण्णाणमोहिएहिं	128
अरहंत परमदेवं जो	137
अलियस्स फलेण	51
अव्वावाहमणंतं	125
असणाइचउवियप्पो	155
असिफरसुमोग्गरसत्ति	22
अहवा सो परमप्पो	99
अहिसेहगिहं देवा	170
इच्चेयावि सव्वे	185
इय अट्ठगुणो देओ	178
उप्पण्ण समयपहुदी	72
उववासो कायव्वो	154
उव्वरिऊण य जीवो	74

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एइंदिएसु पंचसु	78
एए सव्वे दोसा	120
एयाइं वयाइं णरो	157
एवं अण्णइकाले	94
एवं णरयगईए	73
काइं वि खीराइं	10
कामाग्गितत्तचित्तो	104
किं दत्तं वरदाणं	166
कुणइ पुणो वि य	175
कुंभीपागेसु पुणो देहं	59
को मज्झ इमो जम्मो	164
खणमुत्तावणवालण	79
खट्टंगकपालहरो	97
खंडंति दो वि हत्था	52
खायंति साणसीहा	61
खीराइं जहा लोए	9
गद्दापहारविद्धो मुच्छं	23
गामे णयरे रण्णे	145
गायंति अच्छराओ	163
चइऊण सव्वसंगे	156
चक्केहिं करकचेहिं	48
चंपंति सव्वदेहं	49
चुण्णीकओ वि देहो	71

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छम्मासाउगसेसे	90
छुहतण्हवाहिवेयण	117
छुहतण्हा भय दोसो	118
जइ इच्छइ परमपयं	131
जइ ईसरणाम णरो	129
जइ एरिसो वि धम्मो	18
जइ एरिसो वि मूढो	105
जइ एरिसो वि लोए	101
जइ ते हवंति देवा	115
जइ पावइ उच्चत्तं	82
जइ वि खिविज्जे	67
जइ होइ एयमुत्ती	110
जं तु दिसावेरमणं	148
जत्थ वहो जीवाणं	15
जं परिमाणविरहिया	26
जं पीयं सुरयाणं	28
जं भासियं असच्चं	27
जम्मजरमरणतिदयं	136
जम्मंधमूयबहिरो	83
जम्हा अरिहंत हवइ	132
जम्हा छुहतण्हाओ	133
जलथलआयासयले	106
जलमलमइलिअंगा	187
जस्स त्थि भयं विचित्ते	116

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जस्स रडंतस्स पुणो	43
जह्मा सो परमसुही	124
जियकोहो जियमाणो	135
जे परिमाणविरहिया	56
जे सुद्धवीरपुरिसा	184
जो अप्पणो सरीरे	113
जो एरिसियं धम्मं	19
जो जिणवरिंदपूअं	138
जो तिक्खदाढभीसण	98
जो दहइ एयगामं	102
जो धम्मं ण करंतो	7
जो वहइ सिरे गंगा	100
डंभिज्जइ जत्थ जणो	17
डहिऊण य कम्मवणं	181
णमिऊण देवदेवं	1
णवजोवणं पि पत्तो	84
ण वि अत्थि माणुसाणं	190
ण समत्थो रक्खेउं	114
णाऊण एव सव्वं	29
णाऊण णिरवसेसं	167
णाऊण देवलोयं	165
णारइयाणं वेरं	64
णिब्भूसणो वि सोहइ	123
णिये जणणीए पेट्ठं	112

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिरए सहावदुक्खं	66
णीसरिउं सो तत्थ	33
णीसरिऊण वराओ	45
णेच्छइ थावरजीवं	111
णेरयाणं तण्हा तारसिया	69
तं णत्थि जं ण	6
तत्ताइं भूसणाइं चित्ते	54
तत्थ वि पडंति	31
तत्थ वि पव्वयसिहरे	34
तत्थ वि पावइ दुक्खं	41
तत्थुप्पण्णं संतं	21
तम्हा हु सव्वधम्मा	14
तस्स चडावंति पुणो	55
ताए पुणो वि डज्झइ	38
ताडणतासणदुक्खं	76
तारिसिया होइ छुहा	70
तिलोयसव्वसरणं	89
तेत्तियमेत्तो लोहो	68
तेसिं भयेण पुणो धावंतो	35
तेसिं होंति समीवे	160
दट्ठूण अण्णदेवे	88
दट्ठूण य उप्पत्तिं	161
दंडंति एक्कपव्वं	63

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्वच्छराहिं य समं	176
दिव्वाणि विमाणाणि	158
देवयपियरणिमित्तं मंतोसह	143
देवयपियरणिमित्तं मंतोसहि	25
धणधण्णदुपयचउप्पय	147
धणुबंधविप्पहीनो	85
धम्मा य तहा लोए	11
धम्मेण कुलं विउलं	4
धम्मो जिणेण भणिओ	139
धम्मो तिलोयबंधू	3
धम्मोत्ति मण्णमाणो	20
धारंधसारगहिले	188
पंचणमोक्कारपयं	152
पंच य अणुव्वयाइं	142
पडिबोहिओ हु संतो	174
पढमं जिणंदपूयं	173
पत्ताइं पडंति तहा	32
परदारस्स फलेण य	53
परिचइऊण कुधम्मं	95
पसुमणुविगईए	86
पाडित्ता भूमीए पाएहि	50
पायंति पज्जलंतं	57

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारसियभिल्लबब्बर	81
पावंति केइ दुक्खं	12
पावंति केइ धम्मादो	13
पीलंति जहा इक्खू	47
पुणरवि धरंति भीमा	44
पुणरवि पणमिय मत्थो	168
पूजारिहो दु जह्मा	134
बहुआरंभपरिग्गहगहणं	16
बहुणट्टगीयसाला	91
बहुभूसणेहि देहं	171
बहुवेयणाउलाए	80
वुहजणमणोहिरामं	2
भवियाण बोहत्थणं	193
भुक्खाए संतत्तो	37
भुंजित्ता चिरकालं	179
भुंजित्ता मणुलोए	180
भूमीसमं देहं	60
मज्जारसाणरज्जु	150
मरणभयभीरुयाणं	46
मायावहिणिसमाओ	146
मांसाहारफलेण य	58
रइजिंभओ य दप्पो	119

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रण्णे तवं करंतो	103
रूद्दट्ठविवज्जणं पि समदा	153
लद्धूण चेयणाए	24
लोयालोयविदण्हू	126
वच्छच्छभूसणाणं	151
वरभवणजाणवाहण	5
वरमुरवदुंदुहिरओ	162
वसियव्वं कुच्छीए	92
वहबंधपासछेदो	150
वागादीहि असच्चं	144
वायस्स गिद्धकंका	62
वाहिज्जइ गुरुभारं	75
वेएण वहंताए	40
संपुण्णचंदवयणो	122
सम्मत्त णाण दंसण	192
सम्मत्तरयणलब्भे	141
सम्मत्तसलिलपवहो	140
सव्वे वि य णेरइया	65
सव्वो वि जणो	8
सव्वण्हुवयणवज्जिय	87
सव्वण्हूणाम हरी	130
सव्वण्हू वि य णेया	96
संसारम्मि वसंतो	108

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिंहासणछत्तत्तय	121
सिंहासणट्ठियस्स हु	172
सीउण्हं जलवरिसं	77
सुक्को विजिज्झकंठो	36
सुमणुसहिए वल्लह	182
सो एवं अच्छंतो	39
सो एवं णासंतो	30
सो एवं बुड्डंतो	42
सो एवं विलवंतो	93
सो मज्झ वंदणीओ	169
सोहंति ताइं णिच्चं	159
हरिहरबह्मणो वि	109
हेमंते धिदिमंता	186
होऊण परमदेवो	107

—o—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

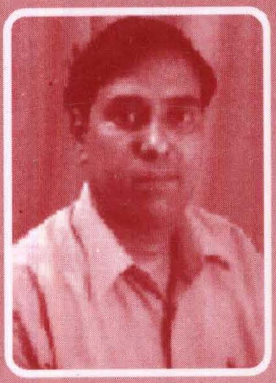

डॉ. विनोदकुमार शर्मा

	अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, पण्डित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, शाजापुर (म.प्र.) 465001
जन्म–	हाथरस (उ.प्र.)
जन्मतिथि–	23 जनवरी, 1965
पिता–	श्री राम प्रकाश शर्मा
माता–	श्रीमती मुन्नी देवी
शिक्षा–	पी.सी. बागला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हाथरस (आगरा विश्वविद्यालय), उ.प्र.
उपाधियाँ–	एम.ए. (संस्कृत, हिन्दी) प्रभाकर (संगीत गायन) पी-एच.डी. (संस्कृत)
प्रतियोगी परीक्षाएँ उत्तीर्ण–	नेट (यू.जी.सी.) एवं पी.एस.सी. (म.प्र.)
अध्यापन–	सन् 1993 से निरन्तर अध्यापन एवं शोध–निर्देशन।
प्रकाशन–	100 व्यंग्य लेख, 25 शोध लेख, 50 कविताएँ एवं 25 आलेख विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।
सम्पादन–	(क) श्रीमद्विजययतीन्द्र सूरि स्मारक ग्रन्थ (सह-सम्पादन)
मौलिक ग्रन्थ–	'अभिज्ञानशाकुन्तलम में ध्वनि' (शोध-प्रबन्ध)
अनुवाद–	धम्मरसायणं (श्रीपद्मनन्दिमुनिप्रणीत)।
सम्पर्क–	'उत्कर्ष', विजयनगर कॉलोनी, शाजापुर (म.प्र.) पिन– 456001
	फोन : 07364-226154

Print : Akrati Offset, Ujjain Ph. 0734-2561720, 96300-77700

Jain Education International